1974

अपने आस-पास

कहानी संकलन

सम्पादक
मणि मधुकर

राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-२

आमुख

प्रति वर्ष शिक्षक दिवस पर राजस्थान का शिक्षा विभाग शिक्षकों की साहित्यिक कृतियों के प्रकाशन का प्रबन्ध करता है। अब तक कुल २७ प्रकाशन प्रकाशित हो चुके हैं।

इस वर्ष भी सदा की भाँति ५ प्रकाशन प्रस्तुत किये जा रहे हैं, किन्तु इस बार पाठकों को कुछ नई विशेषताएँ देखने को मिलेंगी।

पहली विशेषता यह है कि 'शिविरा' सम्पादक मण्डल की विशेष अभिशंसा पर इस वर्ष इन प्रकाशनों के सम्पादन का कार्य सरकारी सेवाओं से बाहर स्वतन्त्र साहित्यकारों को सौंपा गया है, जिन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता व निष्पक्षता के साथ प्रकाशनीय रचनाओं का चयन किया है। इस प्रकार इस वर्ष आपको पाँच भिन्न दिशाओं से, पाँच भिन्न दृष्टियों से, चयन की गई रचनाओं का आस्वाद प्राप्त होगा। पाँचों पुस्तकों की भूमिकाएँ भी आमंत्रित सम्पादकों द्वारा लिखी गई हैं। विश्वास है, इन भूमिकाओं से हमारे शिक्षक-लेखकों को अपनी सृजनशीलता के मूल्यांकन व मार्गदर्शन में मदद मिलेगी।

दूसरी विशेषता यह है कि इस वर्ष दो लेखकों की दो पूरी पुस्तकाकार कृतियाँ प्रकाशित की जा रही हैं और ये दोनों ही राजस्थानी में हैं। इन दो में से एक लेखक नृसिंह राजपुरोहित की एक अन्य कृति 'अमर-चूनड़ी' (राजस्थान कहानी संग्रह) हम पहले सन् १९६९ में प्रकाशित कर चुके हैं। इस बार पाठक इनका राजस्थानी उपन्यास 'भगवान महावीर' पढ़ेंगे। यह वर्ष भगवान महावीर की २५००-वीं जयन्ती का विशेष समारोह का वर्ष है। इस दृष्टि से भी यह कृति विशेष उपयोगी रहेगी।

लेकिन विभागीय प्रकाशनों की शृंखला में अन्नाराम सुदामा पहली बार आ रहे हैं। राजस्थानी लेखन में इनकी शैली का विशेष स्थान है। आशा है, पाठकों को इनका उपन्यास 'आंधी अर आस्था' पसंद आएगा।

जिन साहित्यकार-बन्धुओं ने इस वर्ष के प्रकाशनों की रचनाओं के चयन-सम्पादन का भार स्वीकार कर इस नई योजना में विभाग को सहयोग दिया है, उनके हम आभारी हैं। विश्वास है, इस नई योजना का सभी क्षेत्रों

प्रकाशन किया जावेगा । चयन-सम्पादन का कार्य पाँच भिन्न व्यक्तियों द्वारा चयन-कार्य में इन अनुभवी साहित्यकारों द्वारा किये जाने के कारण इनकी उत्कृष्टता और वैविध्य की भी नयी अनुभूतियाँ हमें उपलब्ध हो सकेंगी ।

राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों को इन कृतियों के लिए हमें इस वर्ष हजार से भी अधिक रचनाएँ प्राप्त हुई थीं । प्रति वर्ष बढ़ती हुई इस संख्या ज्ञात होता है कि हमारे शिक्षक साहित्य-सृजन में उत्तरोत्तर अधिकाधिक रुचि लेने लगे हैं ।

जिनकी रचनाओं का चयन हुआ है, उन्हें हमारी बधाई ! जिनका चयन नहीं हो सका है उन्हें निराश नहीं होना चाहिए, उनमें भी कई उत्कृष्ट रचनाकार हैं । स्थानाभाव के कारण कई उत्कृष्ट रचनाएँ भी लौटानी पड़ती हैं ।

जिन महानुभावों ने इन प्रकाशनों में हमें सहयोग दिया है, विभाग उनका आभार मानता है ।

अनिलकुमार
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर ।

सिर्फ एक प्रवेश द्वार !

लगभग सवा सौ कहानियों के बीच से गुजरने के बाद, ये उन्नीस कहानियाँ ! राजस्थान के शिक्षकों द्वारा लिखी गयी इन कहानियों के सम्पादन का दायित्व जब मुझे सौंपा गया तो लगा, जैसे सहसा मैं अपने उस स्मृति-खंड के सामने खड़ा कर दिया गया हूँ" जिसमें घंटों की एक बेचैन-सी आवाज है, हवा में एक परिचित गन्ध का अहसास भरते हुए कितने ही मासूम चेहरे हैं, ब्लैक-बोर्ड के वक्ष पर चॉक से लिखी गयी सफेद-भक पंक्तियाँ हैं, किताबों-कापियों के भीतर से उमड़ती हुई फड़फड़ाहटें हैं, डेस्क के नीचे हिलते हुए पाँवों की नामालूम हरकतें हैं और''' अहाते के बाहर, मुँह में दो अंगुलियाँ डालकर सनसनी फैला देने वाली पुरजोर सीटियाँ हैं ! और भी बहुत-से दृश्य उभरते हैं। दबदबे की दुनिया से 'आउट' होने के बाद, बाजार के शोरगुल से दुबके हुए और सड़ी-गली सब्जियों को थैले में ठूसते हुए—मास्टरजी ! चप्पल की टूटी हुई हुई बद्दी, कमीज का उखड़ा हुआ कालर, होठों की पपड़ियों में सूखती हुई मुस्कराहट और दो उदास आँखें, मानो झुर्रियों के काले घेरों में उजाले के टुकड़ों को कैद कर दिया गया हो।

चाहे शहरों के स्कूल हों, या कस्बों और गाँव-ढाणियों के—अध्यापकों के अभावों और संघर्षों की कहानी सब जगह एक-सी है, अलबत्ता आज की नयी परिस्थितियों में उनकी समस्याओं का आकार अधिक बड़ा और भयावह हो गया है। अर्थ-संकट के समानान्तर मूल्यगत संक्रमण ने न केवल उनकी हैसियत को बदल दिया है, बल्कि समूचे व्यक्तित्व को एक ऐसे बियाबान में उलझा दिया है—जहाँ कँटीले झाड़-झंखाड़ तो अनगिनत हैं, पर पैरों को निकल देने वाली पगडंडियाँ नहीं हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते भारतीय जन-जीवन और चिन्तन में कई बुनियादी परिवर्तन हुए हैं। इस परिवर्तित परिवेश को कविता, कहानी और नाटक में मुखर अभिव्यक्ति मिली है। खास तौर से हिन्दी कहानी की रचना-शक्तियाँ इतनी तेजी से उभर कर प्रकट हुई हैं कि विचार, शिल्प और वस्तु के स्तर पर एक ठोस प्रयोगशीलता ने जन्म लिया है। व्यक्ति और परिवार के सीमित घेरे से निकल कर, समकालीन कहानी उस अनुभव-तन्त्र से जुड़ गयी है, जो सामाजिक चेतना को बड़े सन्दर्भों का खुला और विश्वास-भरा आकाश देता है, साधारण जिन्दगी, मामूली

लोग और उनके बीच बिखरे हुए सहज सम्बन्धों ने ऐसी कथा-स्थितियों को उकेरना आरम्भ कर दिया है कि रोब्बे ग्रिलेत, नार्मन मेलर, सैमुअल बेकेट आदि से उधार ली गयी आधुनिकता सहसा बेचमक और व्यर्थ नजर आने लगी है। आरोपित 'क्राइसिस' की नकाब उतरते ही अपने वातावरण की वास्तविकताओं और समस्याओं का सही रूप स्पष्ट होने लगा है।

किन्तु राजस्थान के इन शिक्षकों और आज के समर्थ कहानीकारों का कथा-संसार अलग-अलग है। यथार्थ वही है, पर उसके प्रति अपनाये गये 'एटीट्यूड' ने साफ विभाजन-रेखा खींच दी है। विडम्बना यह है कि लोक-संवेदना के जिस पुख्ता धरातल पर शिक्षक-कथाकार की दृष्टि को अधिक व्यापक और मुक्त होना चाहिये था, वहीं वह एक गडमड रोमैंटिक रस के भीने-भीने आवरण में खो गयी है। हो सकता है, परिस्थितियों ने उसे रचना की अन्तःप्रेरणा और शैली के निर्वाह दायित्व से तोड़ कर सिर्फ 'टाइप' हो जाने के लिए विवश कर दिया हो, क्योंकि उसकी 'एप्रोच' मुझे न स्वाभाविक लगती है, न ही प्रामाणिक! निर्णय के क्षणों में वह अचानक एक बेमेल द्वन्द्व से घिर जाता है या किसी अमूर्त 'आदर्श' में पलायन कर जाता है। कहीं-कहीं महसूस होता है कि उसने असंगतियों, अन्तर्विरोधों और वंचनाओं का तीव्र अहसास किया है और कोई बेकरारी, बेचैनी या 'घुमड़न' भीतर ही भीतर शब्दों को टटोल रही है, पर अन्ततः वह कुछ उपलब्ध सत्यों और सूक्ति-वाक्यों का सहारा लेकर बिखर-सा जाता है।

यह बिखराव बेवजह नहीं है।

समाज के वर्तमान ढाँचे में बदलाव की निर्मम और गहन प्रक्रिया के बावजूद मास्टर की 'इमेज' अभी आदर्शों के बेतुकान बटखरे में खड़ी हुई है। वह एक सामाजिक प्राणी न रह कर, मात्र एक नैतिक प्राणी बन गया है। मिट्टी के तेल के लिए खाली पीपी को हाथ में लटकाये, घंटों कतार में रगड़ते हुए और दुकानों पर सूखे शिकम में खिसटते हुए भी वह आधा द्रोणाचार्य, चौथाई अष्टावक्र और चौथाई 'मधुकराम' है। प्रमाद मधुकराम को निगल जाते हैं, किसी अकेले कोने में अष्टावक्र अपने टेढ़े-मेढ़े अंगों को धोती-कुरते-कमीज-पतलून से ढँकने की कोशिश करता रहता है और जैसे कोई टुकड़ों में टूट जाता है, पर—द्रोणाचार्य तब भी आसन पर कायम रहता है। वह द्रोणाचार्य, जिसके कर्तित्व को राजसत्ता ने इतना स्थिर बना दिया था कि उसका विराट् व्यक्तित्व दुर्योधन के सिंहासन पर आच्छादित एक 'आज्ञाकारी'-छत्र मात्र बन कर रह गया था।

जाहिर है कि भिन्न-भिन्न की नैतिकताओं के विचित्र और असमान्यवद ... ने शिक्षक-कथाकार की रीढ़ को ही नहीं, लेखनी को भी दुहरा कर दिया है। ... कल्पनाओं में सोचने और धारणाओं में जीने का आदी हो गया है। यह दुविधाग्रस्त अभिव्यक्ति इस शहद की अधिकांश कहानियों में, बिना किसी मान-मोह के, पूरी

सच्चाई के साथ, व्यक्त हुई है। उनमें भावनाओं को आंदोलित करने और मानवीय संवेगों को झकझोरने की शक्ति है। प्रायः वे एक व्यक्ति की ट्रेजेडी या मन:स्थिति को प्रस्तुत कर, उसके माध्यम से एक सम्पृक्त आत्मीयता और रागात्मक तल्लीनता के खण्ड-चित्र बनाने लगती हैं। उनकी अन्तर्यात्रा उद्दाम जिजीविषा, अकुलाहट और कम्पन का बोध देती हुई इकहरी बुनावट में ढल जाती है। कई बार अनुभूतियों की सघनता और अभिभूत कर देने वाले दृश्यों की कतार में शास्त्रीय तत्व ओझल हो जाते हैं। फिर एक ऐसी आयामहीन सांकेतिकता और ताजगी के दर्शन होते हैं, जिसमें कहीं दुराव-छिपाव नहीं है। आर्थिक परिस्थितियों की मार को झेलता हुआ मध्य-वर्गीय संघर्ष, दुर्निवार यंत्रणा की अन्तरंग प्रतीति के संग, सीधी, सरल और निर्व्याज शैली में व्यक्त होता है। ऊपरी तौर पर वे असामान्यता या असाधारणता का आग्रह नहीं रखती हैं, पर दैनन्दिन अस्तित्व की ऊब और कोमल आवेगों की अनाम-सी महक ने उनमें आकर्षण भर दिया है।

'अपने आसपास' की भाषा में कोई चमत्कार नहीं है, किन्तु सूने चेहरों, भूनी आँखों, गहरे जख्मों, शोक खाये हुए घुटनों और औंधे सपनों के निकट जिन शब्दों का ठहराव हो सकता है, उन्हें कहानीकारों ने पाने और अन्तरंग रचाव में शामिल करने का यत्न किया है। वे आस्थाहीन नहीं हैं, कहीं-न-कहीं विश्वासों के कमजोर तन्तुओं से बन्धे हुए हैं—किन्तु एक अन्धेरे भविष्य का भय, क्षोभ और वितृष्णा का काल-जाल भी उनके भीतर बेतरह फैला हुआ है। यही कारण है कि वे जब-तब अन्तर्मुखी लगते हैं और रोशनी के शेष ज़र्रों को बाहर नहीं, अन्दर की दुनिया में पाना चाहते हैं। अलबत्ता नये नैतिक बोध ने करुणा और भावुकता के होते हुए भी, उनकी कहानियों के प्रभाव-बिम्बों का 'एस्थेटिक्स' बदल दिया है। वे अपनी उदासी, खिन्नता, एकरसता, प्रसन्नता या उद्विग्नता में पूरी तरह डूब कर लिखते हैं और उसी भावाकुल मूड में, आसपास की स्थिर अगाधता को खंगालते हुए, विरलता की तलाश करते हैं।

शिक्षा-विभाग का यह प्रकाशन एक प्रवेश-द्वार है, जो शिक्षक-कथाकारों को आज के जटिल यथार्थ से साक्षात्कार करने और आगे के आसमानों दरवाजों पर निरन्तर दस्तक देने के लिए प्रेरित कर सकता है। रचना-धर्म और उसमें फूटने वाले रास्तों का उलझाव कितने संकट साथ ले कर चलता है, यह गिननी करना एकबारगी कठिन है, क्योंकि हर रचनाकार सर्वथा निजी ढंग से स्वरों के बदहवास आरोह-अवरोह में अपने और दूसरों के लिए सार्थक संगीत चुनता है। किनवकन, मिज़राब पहनने वालों को मेरी गहरी शुभकामनाएँ!

अनुक्रम

1

उसनें कहा

□

कमर मेवाड़ी

उसने कहा कि परिस्थितियाँ अत्यधिक विकट रूप-धारण कर चुकी हैं और ज़िन्दा रह पाना कठिन हो गया है।

उसने कहा कि कार्यालय के सभी साथी विमुख हो गये हैं और अब सीधे मुँह बात तक नहीं करते। यहाँ तक कि चपरासी भी बात-बात पर मुँह बिचका देते हैं।

उसने कहा कि बॉस का रवैया तो और भी खतरनाक हो गया है। वह बड़ा तुनक मिजाज आदमी है। बात-बेबात भड़क उठता है। उसने दो-तीन बार फाइल को मेरे मुँह पर दे मारा है।

उसने कहा कि यही नहीं, बॉस इससे भी ज्यादा खूँखार आदमी है, स्साला अपने आपको पण्डित नेहरू का पी.ए. समझता है और यही प्रचारित भी करता है।

उसने कहा कि वह ऐसे खतरनाक आदमी के मुँह तक नहीं लगना चाहता। न जाने वह कब क्या कर बैठे—ऐसे आदमी भरोसे के काबिल नहीं होते।

उसने कहा कि बॉस लुंगी लपेटे दिन भर खाट पर पड़ा-पड़ा जासूसी पुस्तकें पढ़ता रहता है। उससे कोई बात पूछने जाओ तो बड़ा नाराज होता है।

उसने कहा कि बॉस सिन्धी है और शक्ल-सूरत से लगता है कि यह स्साला ज़रूर टी. बी. का मरीज होगा।

उसने कहा कि वह कुछ जासूसी उपन्यास एक कबाड़खाने से उठा लाया है जिन्हें वह बॉस को पढ़ने के लिये देगा ताकि वह अपने इस नशे में मग्न रहे और वह अपना उल्लू सीधा करता रहे।

उसने कहा कि आजकल वह कार्यालय में आये पत्रों के उत्तर तक नहीं देता

है। सिर्फ डिस्पैच रजिस्टर में एंट्री दिखा देता है। बचे हुए पोस्टेज का उपयोग वह अपनी रचनाएँ भेजने में करता है।

उसने कहा कि टाइपिस्ट का उपयोग भी वह सिर्फ स्वयं के लिये करता है। टाइपिस्ट पूरे समय धड़ाधड़ उसकी कविताएँ और लेख टाइप करता रहता है।

उसने कहा कि वह इन दिनों कई विदेशी कविताओं का राजस्थानी में अनुवाद कर रहा है, पर उसे हर समय इस बात का भय बना रहता है कि कहीं कॉपीराइट का कोई बखेड़ा न खड़ा हो जाय।

उसने कहा कि आजकल उसके सभी दोस्त बड़े नीच, मक्कार और हराम-खोर हो गये हैं। दिन-रात अपनी पत्नियों को लेकर बिस्तर में दुबके रहते हैं और उसकी बिलकुल परवाह नहीं करते।

उसने कहा कि सभी दोस्तों के खिलाफ जल्द ही वह एक मोर्चा खोलने वाला है, वैसे वह इतना बलवान है कि चाहे तो सभी को नेस्त-नाबूद कर दे।

उसने कहा कि समय आने पर वह प्रत्येक दोस्त से बदला लेगा और उनके सिर अपने कदमों में झुका देगा।

उसने कहा कि वह प्रगतिशील लेखकों से सख्त नफरत करता है। इधर उसने एक लेख लिखा है जिसमें प्रगतिशीलों को खूब गाली-गलौच दी है।

उसने कहा कि वह स्वयं को प्रगतिशील कहलवाने के बजाय गतिशील कहने में गौरव समझता है।

उसने कहा कि इधर उसका एक अजीज दोस्त प्रगतिशीलों के एक विशेष गु में शामिल हो गया है और उसे अब बिलकुल नहीं गांठता।

उसने कहा कि उसका एक और प्यारा दोस्त प्रेस मालिक बनकर उसकी नौकरी पर चढ़ने की ताक में है।

उसने कहा कि उसका एक और अभिन्न और प्यारा दोस्त उसके हर षड्यंत्र में दीक्षित हो चुका है। फिर भी बड़े प्यार से अपने खास होटल पर खाना खिलाता है और चाय पिलाता है।

उसने कहा कि वह इन दोस्तों से रुपया उधार लेकर हजम करता रहा है। उसने आज तक उधार वापस नहीं चुकाया।

उसने कहा कि अब वह इन दोस्तों का क्या करे, जिनमें न कोई शर्म बची है और न लिहाज है।

उसने कहा कि इधर वह कभी से बड़ा परेशान हो गया है, न जाने क्या-क्या

सपने आल-जाल

ऊट-पटांग खरीद कर ले आती है कि बस पूछो मत। भला बताइये अब इस सौ रुपये वाली जाजम को खरीद कर लाने में क्या तुक थी।

उसने कहा कि पत्नी की आदत दिन-बदिन खराब होती चली जा रही है। वह उसके हर मित्र और परिचित से रुपये उधार माँग लेती है।

उसने कहा कि पत्नी हर ऐरे-गैरे के सामने घर-परिवार का दुखड़ा रोने बैठ जाती है, इसके अलावा भी पत्नी में और कई बुरी आदतें हैं जिनका ज़िक्र बेकार है।

उसने कहा कि पत्नी की इन्हीं हरकतों के कारण उसे कई बार व्यर्थ में ही बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ता है।

उसने कहा कि पत्नी बड़े ज़िद्दी स्वभाव की है और उसे अपने सामने कुछ भी नहीं समझती।

उसने कहा कि पत्नी की विमुखता तो समझ में आती है, पर इन दोस्तों को क्या हो गया, ये सब इतने बेगाने क्यों हो गये।

उसने कहा कि पत्नी, दोस्तों और ऑफिस के कारण उसका जीना हराम हो गया है। वैसे वह चाहे तो इन सबके मिजाज़ दुरस्त कर सकता है, पर वह सोचता है कि अब जिन्दगी में शेष बचा ही क्या है।

उसने कहा कि परिस्थितियाँ अत्यधिक विकट रूप धारण कर चुकी हैं और जिन्दा रह पाना कठिन हो गया है।

उसने कहा कि वह अब जीना नहीं चाहता, किसी न किसी दिन वह अवश्य ही आत्म-हत्या कर लेगा।

उसने कहा कि मरने के पहले वह अन्धेरी सुरंग के दरवाजे तक पहुँच जाना चाहता है ताकि अन्य यात्रियों की सूची तैयार कर सके।

उसने कहा कि बस यही उसकी अन्तिम इच्छा है।

□□□

2

जिन्दगी कुछ और है

□

अरनी रॉबर्ट्स

रात के ग्यारह बज चुके हैं, सिगरेट का एक लम्बा सा कश लेकर मैं कहता हूँ—"लगभग हम सब लोग आ चुके हैं"" ""माहर क्यों नहीं आया अब तक—कहीं स्साले को किसी पुलिसवाले ने धर तो नहीं लिया। वैसे वो पट्ठा""""इतनी जल्दी हथकंडों में चढ़ने वाला तो नहीं है इन पुलिस वालों के"" ""कहीं ऐसा तो नहीं किसी थानेदार की ही जेब साफ कर रहा हो और धर लिया गया हो ' ""।"

ही ही ही' रतन हँसता है भद्दे ढंग से। "उस्ताद"" 'माहर सचमुच माहिर है, पुलिस क्या है उसके सामने! कोई माई का लाल उसका बाल बाँका नहीं कर सकता"""" बिजली की फुर्ती है उसमें """ और शिकार की सही पकड़"" ""।"

रतन एक बार और भद्दे ढंग से हँसता है। फिर सामने पड़ी शराब की बोतल उठाकर मुँह से लगा लेता है। अगर बन्तासिंह उसके मुँह से बोतल निकाल कर नहीं छीन ले वह शायद पूरी ही उतार जाये हलक में। सहसा, बोतल को लेकर फसाद सा हो उठता है सबके बीच में मैं चीखता हूँ—"कमबख्तो! क्या कुत्तों की तरह लड़ रहे हो? यह तो आया नहीं चलो आज का हिसाब दो और रवाना होओ।"

सब पॉकेटमार मेरे सामने, मेज के चारों ओर गोलाई में खड़े हो गये हैं। एक से एक खूँखार चेहरा, जिनमें साफ बदमाशी झलक रही है। बीस जोड़ी सात आँखें मुझे देख रही हैं और मैं एक-एक को तौल रहा हूँ आँखों ही आँखों से। ये बदमाश जब सड़क पर भीड़ में होते हैं तो इनकी शक्लें कुछ और ही होती हैं—गिरगिट की तरह रंग बदलती हुई। कभी बदमाश, कभी शरीफ, कभी रईस तो कभी भिखारी"""।

चन्दू मोड़ी हुई आस्तीने खोलता है। नोटों के पुलन्दे गिरते है मेज पर, और भारी सोने का नेकलेस। "एलोरा फाउन्टेन पर एक पारसी का जेब काटा, पाँच सौ हाथ आया; चरनी रोड पर एक रद्दी सी दीखने वाली औरत का पर्स छीनकर भागा—तीन सौ हाथ आया; चर्च गेट पर एक ऐंग्लो इंडियन लड़के का पर्स मारा·· ··दो सौ मिला········और अभी शाम को इलेक्ट्रिक ट्रेन में मारवाड़ी सेठानी का यह हार मारा·······।"

"वैरी गुड········बेहतर रहे········यह अपना हिस्सा सँभालो ··· ···" चन्दू नोटों के पुलंदे उठा लेता है और फिर एक जोरदार सलाम ठोकता है। मिर्जा आगे आता है। थरथराते हाथों से दस-दस के पाँच नोट रख देता है मेज पर। "बस ·· ·· उस्ताद आज इतना ही।"

गुस्से से भर उठता हूँ। "कमीने····बुजदिल···दिनभर बम्बई में घूमा और लाया यह पचास रुपये····तू डिसूजा का नाम बदनाम करेगा दूसरे गिरोह के सामने। अगर अशोक को मालूम पड़ेगा कि डिसूजा के आदमी पचास लाने लगे हैं तो वे कमबख्त खिल्ली उड़ायेंगे।" मैं उसके नजदीक जा पहुँचता हूँ—क्यों रे मिर्जा इतने कम क्यों, किसी लड़की के चक्कर में तो नहीं आजकल ?" तड़ाक् " तड़ाक्····चांटे जड़ देता हूँ कई और फिर घूँसे और लातें भी।

मिर्जा कोने में ढेर हो गया है। मैं औरों की गाथाएँ सुनता हूँ और रुपये बटोरता जाता हूँ। कुछ ही देर में सामने की मेज नोटों, लॉकिटों, चेनों, ईयर-रिंग से भर जाती है। अपने-अपने मिल चुकने के बाद, सब चले गये हैं। कोने में पड़ा मिर्जा कुनमुनाता है। उठकर थोड़ी शराब उसकी हलक में उँडेल देता हूँ। कुछ देर में वह उठकर बैठ जाता है। पीड़ा की रेखाएँ उसके चेहरे पर स्पष्ट हैं। "मिर्जा यह लो दो सौ रुपये। कल से खाली हाथ मत आना।" पैसे लेता है और फिर वह भी बाहर निकल जाता है।

रिस्टवाच देखता हूँ, बारह बज गये हैं। आधी रात हो गई है और माहर नहीं आया है। अचानक किसी के आने की आहट होती है—माहर ही है। दिल खुश हो जाता है। जरूर········आज माहर ने तगड़ा हाथ मारा है, मेरा दायाँ हाथ जो है माहर। मेज पर बची-खुची जगह उसके द्वारा लाये गये नोटों से भर जाएगी···· "पर माहर सिर झुकाकर खामोश खड़ा हो जाता है और मैं चौंक उठता हूँ। यह माहर ही है ? रौब से बोलने और अकड़कर चलने वाला माहर। इसे आज क्या हो गया है ? चेहरा झुका जरूर है पर कोई विषाद········कोई घबराहट नहीं।

"माहर क्या बात है···· ···इतनी देर से ?"

इलाज करवायेगा। तू मेरा बेटा नहीं है। तू एक जेबकतरा है—इस समाज का
पन....' फिर वह डॉक्टर की दी हुई दवाईयों को फेंक देते हैं और डॉक्टर को
हर निकल जाने को कहते हैं। इसके बाद वह पुनः बेहोश हो जाते हैं।

माहौल को जैसे सांप सूँघ गया है। सब खामोश हैं। लगता है इन्सान नहीं
बरना प्रतिमाएँ खड़ी हैं। डॉक्टर साथ खड़े कभी डैडी को तो कभी मुझे देखे जा
रहा है। मैं एक उड़ती दृष्टि माँ की ओर डालता हुआ डॉक्टर का बैग उठाता हूँ
और बाहर आ जाता हूँ। डॉक्टर भी पीछे-पीछे आ जाता है।

मैं सौ का एक नोट उसकी ओर बढ़ाकर कहता हूँ। "आई एम सौरी
डॉक्टर—" डॉक्टर पैसे जेब में रखता हुआ कहता है—"आप अपने डैडी को समझाईये
मिस्टर, वरना कब तक पता नहीं क्या हो जाये—अभी तो उनकी हालत में सुधार
लाने के लिये कुछ किया भी जा सकता है। मैं केस को सँभाल सकता हूँ।"

"डॉक्टर ···उनको अब कोई नहीं समझा सकता" डॉक्टर समझ में न
आने वाले भाव से देखता हुआ स्कूटर स्टार्ट करता है और चला जाता है। मैं भी
एक सिगरेट सुलगाता हूँ और सड़क पर आ जाता हूँ। बार बार डैडी की सूरत
आँखों के आगे आ जाती है—जब वे हाँफते हुए दवाईयों को फेंक रहे थे और कह
रहे थे कि उस गन्दे पैसे से उनका इलाज नहीं होना चाहिये। मैं एक बात बिल्कुल
नहीं समझ पा रहा हूँ कि पैसा गन्दा कैसे हो सकता है? आदमी गन्दा हो सकता
है, उसके विचार, उसका चरित्र गन्दा हो सकता है" लेकिन पैसा"? तो सिर्फ
पैसा है, वह कैसे गन्दा हुआ?

चौराहे पर रोड क्रॉस करनी है। रुक गया हूँ, दृष्टि पड़ती है बन्तासिंह पर।
होटल में से निकले हुए एक मोटे से आदमी के पीछे है। मेरे देखते-देखते ही उसने
मोटे व्यक्ति की जेब पर हाथ मारा और पर्स निकाल लिया है। थोड़ा चूक गया है
और मोटे को मालूम हो गया है। वह चिल्लाने लगता है—'चोर" चोर"'पकड़ो।'
बन्ता भागता है तेजी से। सड़क पर आ गया है ट्रैफिक के बीच। तभी एक टैक्सी
तेजी से आती है। बन्ते का ध्यान पीछे भीड़ पर है। 'बन्ते' मैं चीखना चाहता हूँ
पर इससे पहले ही वह टकरा कर सड़क पर गिरता है और टैक्सी के पहिये उसका
सिर कुचल देते हैं।

बन्तासिंह की कुचली, खून से लथपथ लाश पर लोग थूक रहे हैं। कोई क
है "अच्छा हुआ स्साले पॉकिटमार की यह दशा हुई ..." उसके चारों ओर
भीड़ है। अनेकों चेहरे हैं, पर इस भीड़ में एक भी चेहरा ऐसा नहीं है जिस
पर सहानुभूति के चिन्ह हों। क्या मुझे भी कोई दिन ऐसी ही घिनौ

अपने आस-प

वीभत्स मौत मरना होगा '''और तब कुत्ते की तरह मुझे भी गालियाँ मिलेंगी ''मुझ पर भी थूका जायेगा । मेरी लावारिस लाश खून से लथपथ सड़क पर पड़ी होगी ''' और असंख्य मक्खियाँ भिनभिना रही होंगी''' क्या सचमुच यही होने वाला है मेरे साथ ! क्या जो कुछ कुत्ते के साथ हुआ है वह भविष्य में मेरे साथ होने वाले हादसे की रिहर्सल है ? मैं काँप जाता हूँ यह सब सोचकर । पसीने से तर-ब-तर हो गया हूँ । मुझे लगता है मेरे अन्दर का 'उस्ताद' या 'बॉस' जिसमें हरदम अक्खड़ है, झूठा अहम् और निश्चिन्तता है, सहसा ही मुर्दा हो गया है । गुब्बारे में से हवा निकल जाती है वैसी ही स्थिति में अपने को पाता हूँ । क्या मैं जो ज़िंदगी जी रहा हूँ वह हकीकी ज़िन्दगी नहीं ? क्या इस ज़िन्दगी का कुछ और भी अर्थ है ? मैं अब तक पैसे को ही ज़िन्दगी समझता रहा'' पैसा जो किसी भी घिनौने तरीके से क्यों नहीं कमाया गया हो।

सेंट मेरी चर्च की बाउण्ड्री-वाल का सहारा लेकर खड़ा हो गया हूँ । मैं भीड़ पर दृष्टि डालता हूँ, असंख्य लोग भागते दौड़ते हुए । मैं भी इनमें एक हूँ जो अपनी ज़िन्दगी को किसी लाश की तरह ढो रहा हूँ । जीवन में कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं की । मुझे याद नहीं आता कि जीवन में मैंने कभी कोई अच्छा काम किया हो । मेरी आँखों के आगे घूम जाता एक''' ''मासूम बालक '' इसी सेंट मेरी चर्च के साथ बने स्कूल में पढ़ने जाता था । माँ माथा चूमकर स्कूल भेजती थी-- डैडी की आशाएँ थी बहुत उसमें''''' कितने अच्छे थे वे दिन । सफेद चोगे में लिपटी नन् पैट्रिशा स्नेह से बालों में हाथ फेरती हुई कहती थी—'डिमूआ '' ' मासूम बच्चे ''' तुम अपने जीवन में महान इंसान बनोगे ।' फिर उनके होंठ बुदबुदा उठते थे—'झूठ मत बोलना, चोरी मत करना '' ''' '

'कहाँ खो गया मेरे बचपन का वह रूप''''''वह मासूम रूप उभर इस घिनौने इंसान के रूप में कैसे विकसित हो गया । झूठ, फरेब, दुराचार '''शराब''' गालियाँ'''मारपीट''' चाकूबाज़ी''' फिल्म-पार्टियाँ''' ये सब कहाँ से आ गये । कहाँ खो गया वह नन् का अलौकिक दुआएँ देता चेहरा''' ' । मेरी आँखों से आँसू उबल पड़े हैं''' मैं रो रहा हूँ''''मेरे भीतर रखा कोई सख्त पत्थर पिघल रहा है धीरे-धीरे । चारों ओर भीड़ ही भीड़ है'''भागते दौड़ते लोग'''और मैं रो रहा हूँ''''' ।

मैं छोड़ दूँगा सब कुछ—यह घिनौना जीवन इन गंदे रास्तों की हवस''' यह मेरा निश्चय है । मैं इंसान बनूँगा''' बहुत कुछ खो चुका हूँ पर अब कुछ नहीं खोऊँगा—खोये हुए को बटोरूँगा'''पसीने की रोटी कितना सुख देती । जीवन में जब उसूल होंगे तो जीने में कितना मजा आएगा । मुझे अब जल्दी से घर लौट जाना चाहिए और डैडी के पाँवों में गिरकर क्षमा माँगनी चाहिए । मैं तेज़ी से घर की ओर चल पड़ता हूँ एक नये अहसास को लेकर ।

□□□

बिस्तर समेट कर बगल मे लिये हुए इसी तिवारी में फिर-फिर आ ठुसते थे। रामदत्त से मेरा परिचय इसी तिवारी मे हुआ था।

जरा देर पहले शुरु हुई बरसात अभी-अभी थमी है। खिलाड़ी शिशु सा बरसाती पानी सडक-किनारे की नालियों मे किलकारी भरता दौड रहा है। बादलों की स्याह-सफेदी जहाँ-तहाँ से जर्जर वस्त्र जैसी फट गयी है और लगता है आसमान के नीले मीने टुकड़े उसमे जगह-जगह उलझ गए हैं। लोग अपने पायजामो और धोतियो को हाथों से समेट कर कुछ ऊँचा थामे हुए कीचड उचटने के डर से एक-एक कदम साध-साध कर रखते हुए चलने लगे हैं। बौछार थमने की प्रतीक्षा मे जो अगल-बगल की दूकानों या मकानो की पोलो मे जा छिपे थे, वे सब रेले की तरह सडक पर बह आये हैं। आज मैंने रामदत्त को कई वर्ष बाद इसी रेले मे देखा है। रामपुरा की सडक पर एक लम्बा कोट और पायजामा पहने वह चला जा रहा है। उसके दोनो कंधे एक बुजुर्ग की भाँति झुके हैं। एक हाथ से बच्चे और दूसरे से उसने कुछ छोटी बच्ची का हाथ थामे हुए वह निरपेक्ष भाव मे असमय वार्धक्य का भार ढोता हुआ एक-एक कदम सम्हाल कर रखता चला जा रहा है। चप्पलो से बच्चो के पैर पिंडलियो तक गदी बूँदों से राजस्थानी छींट जैसे छँट गये हैं। उसकी मुट्ठियाँ आज खुली हैं और मेरी प्रश्नहीन आँखें उन पर से हटना नही चाहती। निहार जा रही हैं—एक टक!

महिला चिकित्सालय की तिवारी मे रामदत्त से मेरा वह प्रथम और अंतिम परिचय था। दिखाई वह बाद मे भी दिया लेकिन शायद मुझे भूल चुका था। मैं उसे जानता हूँ लेकिन वार्ता का कभी कोई अवसर न उसने खोजना चाहा और न मैंने पहल की। उस दिन बरसात अचानक हुई थी और वह भी बहुत जोर से। इसलिए तिवारी मे मुर्गों की तरह से अनेकों की भीड एक साथ ठुस आई थी। किसी के हाथो मे बेतरतीब समेटी गई दरी तो किसी की बगल मे ढग से लपेट कर गोल किया गया छोटा सा बिस्तर था। सरकारी प्रबंध की निन्दा के अतिरिक्त किसी की जुबान पर उस समय कोई बात न थी। रामदत्त उनमे पुराण के दुर्वासा या राहुल साङ्कृत्यायन के 'दुर्मुख' की भूमिका प्रस्तुत कर रहा था। लगता था, वह कोई शोषित सर्वहारा रहा है। तभी तो उसकी मुट्ठियाँ भिंची थी और दाँत पीस कर वह आवेश मे बोल रहा था। आर्थिक स्थिति से वह शोचनीय रहा होगा क्योंकि उसके आक्रोश मे घनत्व नहीं रह गया था। प्रसार के कारण वह छोटों सा बिखर गया था। उसके अपशब्द अस्पताल से शुरु होकर रिश्वत लेने वाले चपरासी से सचिवालय के हाथियों तक और सार्वजनिक क्षेत्र मे वाले बाजार के चोरों से लेकर अनाज दाव लेने वाले सेठो, किसानो, जमींदारो तक को नाप आये थे।

वर्ष-वर्ष कर काल के कितने डग स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बीत चुके हैं। अकाल की चर्चा भी हर साल हुई है; रामदत्त जानता है। अकाल की घोषणा को वह नेतागीरी का स्टंट मानने लगा है। तभी तो उसने मुख्यमंत्री को कोसा है जिनकी सदा प्रत्याशित अकाल-घोषणा की आहट पाते ही किसानों, जमींदारों और सेठों ने मिल कर अनाज के दाम आसमान पर चढ़ा दिये हैं। मिट्टी और पत्थर के कंकड़ों को उसने ज्वार, बाजरे और गेहूँ में तौल-तौल कर मिलाते जाते देखा है। बँधी आमदनी वाला रामदत्त आखिर अब जिये तो कैसे? जबकि गृहस्थी की पूरी पल्टन उसके छकड़े पर सवार है।

मैं नहीं समझता, उसकी सभी बातें सत्य रही होंगी किन्तु वाग्जाल की ओट में तिल का अस्तित्व अवश्य रहा होगा तभी तो उसका आक्रोश दीन-दुनिया में भटकता हुआ फिर-फिर उसी अस्पताल पर आ टिकता था।

"जानते हो बाबू!" वह मेरे कंधे को झकझोर कर कह उठा था। उसकी मुट्ठियाँ भिंची और बत्तीसी जकड़ी हुई थी। लगता था कि अपने ऊपर हुए अत्याचार का बदला वह गिन-गिन कर लेगा, लेकर रहेगा।

"इस अस्पताल में होता क्या है? वह चीखकर कहे जा रहा था, "मेहतरानी इनाम के नाम पर जब तक कुछ नहीं पा जाती, काम नहीं करती। बीमार महिला चाहे गंदगी में घुटती रहे। जब तक नर्सों के हाथ गरम नहीं होते तब तक किसी की सम्हाल का यहाँ प्रश्न कैसा? और ये डाक्टर! ...."

वह कहता कहता रुक गया था। पानी उसी तरह झर रहा था। रह-रह कर बिजली चमक जाती और बादल गरज जाते थे। सामने बिजली के खंभे का पीला लट्टू बौछारों के बीच छिपकर केवल प्रकाश के घेरे सा दीखने लगा था। आसमान से गिरती पानी की बौछारें उस घेरे में अलग-अलग चमकती दीख रहीं थीं। खंभे के आसपास रोशनी बिखरी थी लेकिन अंधेरा जो खंभे के निकट से सहम कर हट गया था, किंचित दूरी पर प्रकाश को घेर कर अर्द्ध-चंद्राकार अभेद्य परकोटा सा खींचकर जम बैठा था। रामदत्त ने खंखार कर गला साफ किया। एक बार उसने अस्पताल के जंगले पर दृष्टि डाली और, "हाँ, ये डाक्टर", वह उसी आवेश में बोला, "शायद रिश्वत या इनाम नहीं लेते लेकिन चाहो कि सचमुच इलाज हो तो यह जरूरी है कि पहले उन्हें फीस दो और घर पर सलाह लो। अधिक नहीं, . बीस-पच्चीस रुपये!" वह व्यंग्य-भरी वाणी में बोलता गया, "यह भी नाम ' तो पुण्य हुई। जाओ और मौज करो। जो औरत कल मरती हो, वह .. जाए......उनकी बला से......।"

दस्ते आम-दान

रामदत्त स्वयं इस प्रक्रिया से गुजर चुका था। अस्पताल से पहले वह घर र डाक्टर से मिल चुका था। फीस के रुपयों में उसके पाँच रुपये कम रह गये थे। ाद मे दे देने का आश्वासन उसने दिया, हाथ जोड़े, पैर भी पकड़े और उसकी सजन्या पत्नी अब अस्पताल में थी। बीती रात्रि को ही तो उसके एक बच्ची हुई ो। पत्नी के लिए वह कुछ आहार लाया था। चीख-चीख कर वह बार-बार कह हा था कि वह बहुत गरीब है इसलिए कोई उसकी पत्नी को अस्पताल में ढग से म्हाल भी नहीं रहा। एक बूढ़ी औरत को वह साथ लाया था। अस्पताल में वल वही उसकी पत्नी को सम्हाले थी। वह भी केवल सम्हाल भर ही तो सकती ी। औषधि और पैसे के लिए वह भी क्या करती ? उस औरत ने जो कुछ ामदत्त को दिन मे बतलाया था, वह रामदत्त के लिए बहुत अर्थ रखता था।

मेरी घूमती दृष्टि लट्टू के घेरे से जंगले पर फिसलती हुई बार-बार उसकी ुट्ठियों पर पड़ जाती और आँखें उन पर रह-रह कर अटक जाती। उसकी घोषणा फेर-फिर हो जाती थी। जब-तब वह कह उठता, "मेरी पत्नी का यदि कुछ भी ग्निष्ट हुआ तो देखना बाबू; रामदत्त से बुरा कोई न होगा। वह न डाक्टर को मा करेगा न नर्सों को।" हाँ, डाक्टर के पाँच रुपये वह नहीं भूला था, उसे विश्वास ा, वह जिन्दगी मे कभी उनको चुका ही देगा।

लेकिन तभी उसकी जुबान का पहिया एकाएक रुक गया था क्योंकि अस्प-ाल के खुले अहाते मे जगले के पीछे एक काला छाता दिखाई दे चला था जिसकी छाया मे कोई धुँधली सफेद-सी आकृति धीरे-धीरे आगे बढती आ रही थी। सभी आँखें अब जंगले के फाटक में उलझ गई थीं जहाँ काला छाता ताने खड़ी कोई नर्स ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी।

"ग्यारह नम्बर बेड किसका है ? ग्यारह नम्बर ! बाहर कोई घर का आदमी है क्या ? ·······ग्यारह नम्बर······· !"

रामदत्त की वाणी अचानक जम गई थी। पथराई आँखें लिये वह जंगले से फाटक तक दौड़ गया था। नर्स की आवाज मे अब भी कर्कशता थी।

"वह औरत मर गई है" नर्स ने बेरुखी से कहा था, "प्रसूति रोग से वह ठीक नहीं हो पाई।" रामदत्त की आँखें अब भी नहीं भीगी थीं। फीकी सी स्याही उसके चेहरे पर छा गई। वह टूट गया था। नर्स कहे जा रही थी, "उसकी लाश पड़ी है, जल्दी से उठा ले जाओ, बच्ची अभी जीवित है।"

रामदत्त को यह समाचार अनभ्रगर्जन ही नहीं, वज्रपात जैसा लगा था। जड़ता टूटते ही वह सावन-भादों सा बरस गया था। नर्स का पता नहीं, न जाने कब

"अरे बोलो तो ?" अजय ने रीता को झकझोरते हुए कहा—"क्या तुम्हें मेरे पर से एकदम विश्वास उठ गया ?"

कुछ पल खामोश रहकर रीता गम्भीरता से बोली—"मैं तो केवल एक बात चाहती हूँ ?"

"कहो ?.........क्या चाहती हो ?"

"बँटवारा।.........हम अपना हिस्सा लेकर अलग रहेंगे।"

"क्या कहती हो तुम ?" अजय आश्चर्य में बोला—"जरा सोच-समझकर बोला करो।.........भूलो मत अभी पिताजी की छत्रछाया हमारे ऊपर है।"

"ठीक है।......आप पितृ-भक्त बने रहो।...... मैं तो यहां एक पल भी चैन से नहीं रह सकती।"

अजय के काफी समझाने पर भी रीता न मानी। आखिर अजय का घर के कुछ सदस्यों तक से मन-मुटाव हो गया। परिणामस्वरूप रीता और अजय ने किराये का मकान ले लिया। पर वहाँ भी उन दोनों का संघर्ष बढ़ता गया। रीता चाहती थी कि अजय अभी से अपने पिता की अपार सम्पत्ति का बँटवारा करवा ले; जबकि अजय चाहता था कि वह उस धन की ओर देखे भी नहीं, जिसके कारण उसे इतना कष्ट उठाना पड़ा। पर वह सोचता कि उदर-पूर्ति के लिए कुछ तो करना ही है। काफी दौड़-धूप के बाद उसने अब तक प्राप्त प्रतिष्ठा के आधार पर, एक चालू पत्रिका का सहायक सम्पादक पद प्राप्त कर लिया और लेखन कार्य की ओर झुक गया। लेकिन जितना संतोष अजय को इस कार्य से मिला, रीता को उतना ही असन्तोष हुआ। रह-रह रीता को अपने हवाई किले टूटते नजर आते। इस तरह उनका, कुछ अर्सा और तनातनी में कटा। पर जब अजय न पलटा तो रीता ने भी दौड़-धूप कर एक आफिस में नौकरी कर ली। इस परिवर्तन से अजय की आर्थिक स्थिति जितनी सुधरी, मानसिक स्थिति उतनी ही बिगड़ी। उसे यह उचित न लगता कि रीता समय पर घर न आए। दिन भर आफिस, घर व काफी हाउस में लोगों के साथ खिलखिलाकर हर तरह की बातें करती रहे। हँसी-दिल्लगी करती रहे। जबकि रीता को यह सब उचित लगता। आवश्यक लगता।

एक दिन अजय ने रीता को टोका—"रीता, तुम्हें इस तरह जीवन काटना शोभा नहीं देता। कम से कम अपने घर की प्रतिष्ठा का तो ख्याल रखो।"

"तो मैं क्या करूँ ?.........आर्थिक संकट की अग्नि में तपकर मैंने नौकरी की। आपके डोलने व कागजों को रंगते रहने पर मैंने लोगों से दोस्ती की।.........कहो तो मुँह और पेट पर पट्टी बाँध लूँ।

"तो शादी क्यों की ? दूसरे की जिन्दगी वर्बाद क्यों की ?" रीता ने एक झटके से अटैची को बंद करते हुए क्रुद्ध स्वर में कहा—"आपका जीवन ही केवल माइने नहीं रखता है, दूसरों का जीवन भी माइने रखता है।"

"मैं कब इन्कार करता हूँ।"

रीता ने एक झटके से अटैची उठाई और बिना कुछ बोले बाहर की ओर बढ़ गयी।

"रुकोगी नहीं ?" अजय का भीणा स्वर था।

"नहीं!" रीता के स्वर में आग थी। अजय को लगा जैसे वह कमजोर होता जा रहा है। उसने साहस बटोरा। बोला—"रीता जाना ही चाहती हो तो जाओ। पर यह याद रखना कि जब कभी इस दुनिया से घबरा जाओ तो सीधे मेरे पास चली आना। मेरे घर का दरवाजा सदा तुम्हारे लिए खुला रहेगा।"

रीता, तिरस्कारपूर्ण ढग से गर्दन झटक कर, मुँह बिचकाकर, तेज कदमों को उठाती हुई, आगे बढ गयी। अजय, डबडबाई आँखों से, उसे एक-टक देखता रहा।

अब रीता के जीवन में एक नया बदलाव आया। वह एक छोटे से मकान में रहने लगी। अजीत, युसुफ वगैरा न जाने कितने आवारा लोगों के लिए उसका घर एक तीर्थस्थल बन गया, जहाँ ये सब भक्तगण, बेईमानी से कमाए धन या खून-पसीने की कमाई को और या अपने परिवार वालो का पेट काटकर बचाए धन को, उस साँस लेती हुई प्रतिमा को भेंट दे जाते और वहीं पर जुए और शराब की अग्नि में झौंक देते।

रीता भी नई-नई चीजें खरीद कर, नए-नए कपड़े पहन कर शान से इठलाती हुई घूमती। उसे नौकरी तक की चिन्ता न रही। वह सोचती कि यदि अब अजय उसकी जिन्दगी को देख ले तो उसे मात आए।

पर एक दिन आया कि उसे इस जीवन में भी घुटन लगने लगी। उसे शराबियों व जुआरियों से नफरत होने लगी, जिनके कारण वह भी इन दोनों ऐबों की शिकार होती जा रही थी। उसे एक अभाव खटकने लगा। दिल में एक ठेस लगी। वह सोचती क्यों न अब अजय से समझौता कर लिया जाए ? क्यों न इज्जत के साथ जिया जाए ?.........पर अपने भक्तगणों के आते ही वह अपने बहाव से हट कर, उनके बहाव में कूद पड़ती। उनके रंग में रँग जाने का अभिनय करने लगती। कभी-कभी वह अपने को इस भुलावे में रखने का भी प्रयत्न करती कि वह कितनी साधारण स्थिति से उठकर कितनी ऊँची स्थिति पर पहुँच गयी है। कितने साधारण

स्तर से हट कर कितने ऊँचे स्तर में रहने लग गयी है। पर कभी-कभी वह ऊँचे-ऊँचे हवाई महल बनाती, फिर उन्हें तोड़ने बैठ जाती। एकान्त क्षणों में रोने लगती। ऐसी दुविधा में जीने के दौरान ही एक दिन उसके घर में, एक भूकम्प आया। पुलिस तीन पत्तियों के रंग में डूबे उसके मकान में से उस सहित कुछ लोगों को पकड़ कर ले गयी।

आज करीब दो माह बाद वह छूटी है। कुछ देर विचारने पर उसकी आँखों के सामने, हर चेहरा, मक्कारपन व कुरूपता लिये नाच उठा, सिर्फ एक चेहरे के सिवाय! वह चेहरा था, अजय का। उसके शब्द 'रीना जब कभी इस दुनियाँ से घबरा जाओ तो सीधी मेरे पास चली आना। मेरे घर का दरवाजा सदा तुम्हारे लिए खुला रहेगा—' उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गए। उसका रोम-रोम थिरक उठा और उसके कदम अजय के घर की ओर बढ़ गए।

□□□

5
बैसाखियाँ

□

मीठालाल खत्री

पीछे से कार के भोंपू की आवाज सुनाई पड़ती है। उसकी आँखें पीछे की तरफ देखती हैं। वह जल्दी-जल्दी बैसाखियों के सहारे लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ सड़क के बायीं ओर आ जाता है। कार तेजी से आगे निकलती है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कोई कार उसे आते-जाते बिठा लिया करे! .... नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। खाली कार ले जाते हुए भी ऐसा नहीं हो सकता।

फिर उसकी दृष्टि सामने से आती लड़की के कूल्हों पर ठहर जाती है। वह अपने सिर को झटकता है। वह उसके पास से गुजरती है। चेहरा सन्ध्या के अन्धेरे में साफ दिखाई नहीं दिया। फिर निगाहें पीछे कर देखता है, तो वह लड़की मिनट भर में ही उससे काफी दूर चली गई है। सड़क के दोनों ओर, मकानों के दरवाजों की फाटकों से आता हुआ बिजली के बल्बों का प्रकाश पसरा हुआ है। इस मन्द प्रकाश में आते-जाते लोगों के चेहरे मालूम करना कठिन है।

सिनेमा-हॉल तक वह आ गया है। यहाँ न ठहर कर, वह चलता ही रहता है। चलते-चलते वह अपने-आप में उतरने लगता है। पच्चीस के करीब उसकी उम्र हो गई है। सिर पर उसने कई बार कुछ सफेद बाल देखे हैं। पर सफेद बालों को देखकर उसे कोई दुःख नहीं हुआ है। क्योंकि वह जानता है कि सफेद और काले बालों से उसे क्या लेना-देना.......शादी के लिए उसे कोई अपनी लड़की तो देगा नहीं। फिर दुःखी क्यों हो?.......ठीक है, वह अपने लिए दुःखी नहीं है। घर में और भी तो हैं, जो दुःखी हो सकते हैं। क्या वह उनका दुःख अपना दुःख नहीं समझता?.......बापू है, जो उसकी शादी के लिए दुःखी हो रहे हैं। लेकिन वह इसे दुःख नहीं समझता है। यदि दुःखी होना भी चाहिए तो सिर्फ सरजू के लिए। उसे

स्तर में हट कर कितने ऊँचे स्तर में रहने लग गयी है। पर कभी-कभी वह ऊँचे-ऊँचे हवाई महल बनाती, फिर उन्हें तोड़ने बैठ जाती। एकान्त क्षणों में रोने लगती। ऐसी दुविधा में जीने के दौरान ही एक दिन उसके घर में, एक भूकम्प आया। पुलिस नील पत्नियों के रंग में डूबे उसके मकान में से उस सहित कुछ लोगों को पकड़ कर ले गयी।

आज करीब दो माह बाद वह छूटी है। कुछ देर विचारने पर उसकी दोनों के सामने, हर चेहरा, महाजन व कुरूपता लिये नाच उठा, सिर्फ एक चेहरे के सिवाय! वह चेहरा था, पवन का। उसके शब्द 'रोमा जब कभी इस दुनिया से घबरा जाओ तो सीधी मेरे पास चली आना। मेरे घर का दरवाजा सदा तुम्हारे लिए खुला रहेगा—' उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गए। उसका रोम-रोम पिरक उठा और उसके कदम पवन के घर की ओर बढ़ गए।

□□□

क उतरती है तो, भ्राने वाले दिनों में बदनामी होगी ही, इसमें दो राय नहीं हैं। जू के बदचलन से सारे घर की बदनामी होगी। वह अवश्य उससे पूछेगा। वह की छोटी बहन है। पूछने-ताछने का उसे पूरा हक है।

अंधेरा घना होता जा रहा है। खाना खा चुकने के बाद""""सरजू भाकर के सामने से थाली हटा ले जाती है।

सरजू का शरीर काफी भर गया है। वह सोचने लगता है। पहले उसकी सो के नीचे गड्ढे पड़े रहते थे। गले के नीचे की हड्डियाँ उभरी हुई थी। अब ा नहीं है। कहीं किसी के चक्कर में तो नहीं फँस गयी वह ?

सरजू की शादी के बारे में वह कई बार बापू से कह चुका है। कहने-वहने अलावा और कर ही क्या सकता है ? आखिर करना-वरना बापू के हाथ की बात हुरी। लेकिन वह अपने-आप को भी सरजू के बीच में आया रोड़ा समझने लगा है। ही वजह है कि बापू सरजू के लिए आये रिश्तों को स्वीकार कर नहीं पाये। वह बदनसीब है ही कि इस लगड़े को कौन अपनी पुत्री का अवलम्ब देगा। अपने न्तर्मन की इस मंत्रणा को उसने किसी को महसूसने तक नहीं दिया है। खुद अन्दर अंदर घुटता रहा है। कितना अच्छा होता, यदि बैसाखियाँ उसकी जिन्दगी में न ायी होती !

""""तब वह आठ बरस का था। पड़ौस में ऊँट था। एक दिन बापू के हने पर पड़ौसी ने उसे ऊँट पर बिठाया था। ऊँट पर बैठने का उसका पहला ौका था। वह ऊँट पर से गिर पड़ा था। टांगें लंगड़ा-सी गयीं। काफी इलाज के ाद बैसाखियों का सहारा नसीब हुआ। वरना घर के किसी कोने में पड़ा-पड़ा ड़ता रहता। परन्तु नारी के साथ मिलने वाले सुखद क्षणों की अनुभूति उस घटना े छीन ली।

मन की मंत्रणा बढ़ने लग गयी है। सरजू के प्रति उसके मन में सन्देह की ाई बनती जा रही है। बाई चौके में खड़ी है। एक क्षण उसके पास रुककर बाहर वलने लगती है तो, वह पूछता है—खा लिया सब ने ?

—हाँ।

—कहाँ जा रही हो ?

—पड़ौस में।

—बापू अन्दर है ?

—हाँ""""रसोई में। और वह बाहर चली जाती है। बाई रोज पड़ौस में चली जाती है। वहीं घण्टे भर के लिए बैठती है। सरजू भी साथिनों के घर जाती

बाई के अधूरे वाक्य मे ही वह समझ गया कि वह क्या कहना चाहती है। बोला—नहीं, सरजू यह नहीं कर सकती।

—बापू के कानों में भी यह भनक आयी है। बाई बेहद धीमे और थके हुए स्वर में कहती है।

—आयी होगी। कहकर वह चुप हो जाता है।

एक लम्बे ठहराव के बाद बाई बोली—खाना परोस दूँ?

—हाँ परोस दो·······

बाई अन्दर चली जाती है।

वह बाई की इस बात को मान्यता नहीं देता कि सरजू के पेट में जीव पल रहा है। वह समझता है, यह अफवाह है। उम्र और शरीर को देखकर लड़की के बारे में अफवाह फैलना स्वाभाविक है। अब सरजू काम पर नहीं जायेगी, वह उसे कह देगा। यदि वह बाहर काम पर जाती है तो अपने बारे में अफवाहें सुनेगी ही और उल्टे दिमाग में गलत विचार उत्तेजित होंगे। क्योंकि अफवाहें भी कुछ हदों तक उत्तेजना देती हैं। और वह गलत रास्तों पर न होते हुए भी, अफवाहों की तरह कोमल डाली की तरह झुक जायेगी।

दरवाजे की तरफ कुछ खटपट हुई तो, उसने अपना चेहरा ऊपर उठाकर देखा। सरजू आई है। सरजू के पेट की ओर देखने का प्रयास करता है। वह पीछे मुड़कर स्लीपरें उतारने लगती है। फिर पलटकर उसके सामने से अंदर चलने लगती है। लेकिन सरजू के पेट की तरफ देखकर पता नहीं लगा सका कि वह माँ बनने वाली है। उल्टे, एक अजीब-सी शर्म से शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। बस, इतना वह पाता है—खाना दे जाना।

और वह खाना भी दे गई। तब भी उसके पेट पर तनिक भी उभार नजर नहीं आया। इस बात का पता देखकर लगाना सहज नहीं है, खाते-खाते वह सोचता है। उससे ही पूछेगा वह। क्या उसके पेट रह गया है? बाई की बात सच है ? सरजू पर उसे विश्वास है कि वह जो कुछ बतायेगी, सही बतायेगी।······, दो घूँट गले के नीचे उतारकर, रोटी का टुकड़ा उड़द की दाल में रखता है, तभी दिमाग में उभरा—नहीं, वह उससे नहीं···
तो, शर्म से सारे बदन में जैसे बिजली का···
पूछकर अन्दर-ही-अन्दर शर्मिन्दगी के बगैर
वह नहीं पूछे!

यदि वह सरजू से पूछ-ताछ

कहता है—कल अस्पताल जा गोलियाँ ले आना।

—देखूँगी। कन्धे के पल्ले से आँखें पोंछती है। क्षण भर रुककर फिर अंदर जाकर कोने में बैठ जाती है।

देखना क्या है? मन हुआ, यह प्रश्न वह सरजू से कर दे। इतना हो जाने के बावजूद भी जैसे सरजू की आँखें खुली नहीं हैं। देखेगी...... क्या देखेगी? कालिख से पुता अपना मुँह! घर की आन पर दाग लगायेगी, कमबख्त कहीं की! यदि उसने गोली लेने से इन्कार कर दिया तो, वह उसे बुरी तरह मारेगा।

वह दरवाजे की तरफ देखता है। दो आकृतियाँ दरवाजे की सीढ़ियों पर चढ़ रही हैं। अंधेरे में धुंधला जाने से वे स्पष्ट नहीं दिखाई देती हैं। अंदर प्रवेश किया तो, आगे बापू हैं और पीछे बाई। बापू चारपाई पर लेट जाते हैं और बाई उसके करीब बैठती है। उसने बाई को बताया कि सरजू के प्रति उसका जो सन्देह है, वह सही है।

—अब क्या होगा? बाई की आवाज है।

—गिरवा देंगे.......

—पर मानेगी, तब न.......

—मानेगी कैसे नहीं।.......चारपाई पर लेटे-लेटे बापू बीच में बोलते हैं और फिर चुप हो जाते हैं।

—सरजू कहाँ है? बाई पूछती है।

—अन्दर है। वह कहता है।

—सो गई?

—क्या पता! और वह आवाज देता है—सरजू!

—हूँ.......रुआँसी 'हूँ' की आवाज आती है।

फिर बाई भी अन्दर जाकर सो जाती है।

सब सो गये हैं। उसे नींद कब आयी, पता नहीं। आधी रात गये दरवाजा खुलने की आवाज से उसकी नींद टूटती है। पूछता है—कौन ऽ ऽ ऽ.......सरजू!

—हूँ.......

—कहाँ जा रही है?

—बाहर पेशाब करने।

और वह करवट बदलकर सो जाता है। दरवाजा बन्द होने की आवाज सुनाई देती है शायद सरजू अन्दर आयी है। वह करवट बदलकर नहीं देखता है। सिर्फ

रहती है। उसकी नजर को [illegible] है। [illegible] वह [illegible] है।

वह भीड़ में खाती है। उसके दोनों आँखों से पानी टपक रहा है। [illegible] एकाएक हाथों को ओढ़नी से पोंछने लगती है।

—क्या कर रही थी? वह पूछता है।

—बरतन माँज रही थी। कहकर वह भी अम्मा पास जाने लगती है।

—तू कहाँ जा रही है?

—नहीं, बाबिल के पास ......कहते-कहते आवाज लड़खड़ा सी गयी।

—मुझे बाई की बात सुनी है? बगैर भूमिका बांधे ही कहना प्रारम्भ करता है।

—क्या? जैसे कोई नयी बात हो, सरजू जिज्ञासा भरे स्वर में कहती है। वह उसके पास आकर खड़ी हो जाती है।

—कि तेरे पेट.......बिना भूमिका बांधे कहना शुरू किया तो, बीच में ही अटक कर रह जाता है।

वह कुछ नहीं बोलती है; चुपचाप खड़ी रहती है। उसके ऊपरी होंठ और मसूड़ों के बीच पसीने की चार बूँदें चुहचुहा आती हैं। जैसे भइया के मजबूत बाजुओं से ही मन में मन की गाँठें खींच गई हों। चेहरा उतर कर उदास हो गया। आँखों में पाइंता तैर आयी। लगता है, सरजू अभी रो पड़ेगी।

मिनट भर चुप्पी रहती है। एकाएक फिर कहना शुरू करता है—वाई तुम पर शक करती है.......और कहती है ....तू.......माँ बनने.......वाली.......है।

वह पूर्ववत् चुप खड़ी रहती है। आँखों में आँसू छलछला आये हैं।

—बोलती क्यों नहीं? ...... क्या यह सच है?

—हूँ ऽ ऽ ऽ...... इस 'हूँ' के साथ न जाने कितनी हिचकियाँ मिलती हैं! अश्रुधारा का प्रवाह तेज हो जाता है।

—सरजू! उसका विश्वास टूट जाता है। मन होता है, वह सरजू के रक्ताभ कपोलों पर चाँटे रसीद कर दें। यह क्या कर दिया सरजू ने!

वह अन्दर चली जाती है। रसोईघर के बाहर कोने में बैठी-बैठी रोती है।

अब क्या होगा?.......उसने तो बापू से कह दिया था कि सरजू के हाथ पीले कर देने चाहिए। उसके जीवन में तो कोई लड़की आयेगी नहीं।

सरजू का रोना अभी बंद नहीं हुआ है। आवाज देकर वह उसे बुलाकर

कहता है—कल अस्पताल जा गोलियाँ ले आना।

—देखूँगी। कन्धे के पल्ले से आँखें पोंछती है। क्षण भर रुककर फिर अंदर जाकर कोने में बैठ जाती है।

देखना क्या है? मन हुआ, यह प्रश्न वह सरजू से कर दे। इतना हो जाने के बावजूद भी जैसे सरजू की आँखें खुली नहीं हैं। देखेगी...... क्या देखेगी? कालिख से पुता अपना मुँह! घर की आन पर दाग लगायेगी, कमबख्त कहीं की! यदि उसने गोली लेने से इन्कार कर दिया तो, वह उसे बुरी तरह मारेगा।

वह दरवाजे की तरफ देखता है। दो आकृतियाँ दरवाजे की सीढ़ियों पर चढ़ रही हैं। अँधेरे में धुंधला जाने से वे स्पष्ट नहीं दिखाई देती हैं। अंदर प्रवेश किया तो, आगे बापू हैं और पीछे बाई। बापू चारपाई पर लेट जाते हैं और बाई उसके करीब बैठती है। उसने बाई को बताया कि सरजू के प्रति उसका जो सन्देह है, वह सही है।

—अब क्या होगा? बाई की आवाज है।

—गिरवा देंगे......

—पर मानेगी, तब न......

—मानेगी कैसे नहीं।......चारपाई पर लेटे-लेटे बापू बीच में बोलते हैं और फिर चुप हो जाते हैं।

—सरजू कहाँ है? बाई पूछती है।

—अन्दर है। वह कहता है।

—सो गई?

—क्या पता! और वह आवाज देता है—सरजू!

—हूँ......उदासी 'हूँ' की आवाज आती है।

फिर बाई भी अन्दर जाकर सो जाती है।

सब सो गये हैं। उसे नींद कब आयी, पता नहीं। आधी रात गये दरवाजा खुलने की आवाज से उसकी नींद टूटती है। पूछता है—कौन ऽऽऽ ......सरजू!

—हूँ......

—कहाँ जा रही है?

—बाहर पेशाब करने।

और वह करवट बदलकर सो जाता है। दरवाजा बन्द होने की आवाज सुनाई देती है शायद सरजू भीतर आयी है। वह करवट बदलकर नहीं देखता है। सिर्फ

6

चौगुटा-क्लब

□

राजानन्द

अब क्या है, जो कुछ था वह तो हमारे वक्तो मे था ''''''पडित राधाकृष्ण की हर बात इस तकियाकलाम से शुरू होती, फिर बेताल की तरह वह अपने अनुभवों मे से एक अनुभव को कथावाचक की शैली मे कहने लगते। उनकी गाथा कभी खत्म नही होती, अलबत्ता घूम-फिर कर दोहर जरूर जाती।

पंडित राधाकृष्ण जिन्दगी भर प्राइमरी स्कूल के मास्टर रहे, इससे आगे वे बढ़ नहीं सके, कहते हैं हमने जो अपने वक्त मे कर दिखाया, वह अगर तुम कलक्टर भी बन जाओ तो नही कर सकते।

'तुम' से उनका मतलब अपने लड़के शैलेन्द्र से होता है, या फिर उसकी उम्र वाले उसके दोस्तो से जो अक्सर शैलेन्द्र के घर आते है।

पडित राधाकृष्ण की उम्र अस्सी के नजदीक है लेकिन अब भी सुबह-सुबह टहलने जाते हैं, दोपहर को चौपड़ उठाकर पब्लिक पार्क में चले जाते हैं; और हम-उम्र रिटायर्ड साथियो के साथ कौड़ियाँ फेंकते रहते हैं, लाल, हरी, पीली, काली गोटियाँ चलाते रहते हैं।

उनके चार-पाँच साथी अपने-अपने घर की सुनाते हैं, सब के बेटे जवान हैं, सब के बेटो को जीने का तरीका ही नही आता; कोई बात ही तय नही है, फिर भी 'हाय, हाय' घर में पड़ी रहती है।

बूढ़े सक्सेना साहब कहते हैं हमने तो अर्जीनवीसी मे दो बेटियों की शादी कर दी, तीन बेटों को पढ़ा-लिखा कर ठिकाने बैठा दिया, पर यह हैं कि अपनी गृहस्थी तक की नही ओट पाते। वह कौड़ी फेंकते हैं और गोटी के खाने बढ़ा देते हैं।

राधाकृष्ण फिर वही अपनातकिया कलाम बोल पड़ते है—अब क्या है

सक्सेना साहब, जो कुछ था वह तो हमारे वक्तों में था, हम सब जो कर गुजरे वह यह लफंगे सात पीढ़ी नहीं कर सकते। आपकी क्या राय है अडवानी साहब ? आप तो सरकारी महकमे में सुपरिन्टेण्डेन्ट रह चुके हैं।

शर्मा जी, घर बनवा लिया था तो सिर छिपाने की जगह है। पेंशन न आती होती तो बेटे कबाड़ की तरह खारिज करके, बैठक में पड़ी कुर्सी की तरह जमा देते। अडवानी साहब को अपनी इस माली हालत और घर में अब भी वकत रखने का गर्व था, जो उनके गोल-मटोल भरे-भरे चेहरे पर अक्सर झलक जाता था। वह अपने वक्त की पेन्ट और कोट अब भी इस तरह सहेज-सहाज कर पहनते थे कि अफसरी रौब झलकता रहे। चारों की चौगुटी से बने इस समय गुजारू क्लब में उनकी अपनी शान थी।

पंडित राधाकृष्ण की शिकायत थी उनका लड़का और बहू चाहे जो कुछ उल्टा-सीधा खाते हैं, पर्दा-सर्दा तो भाड़ में जाए, उनकी बहू न उन्हें गिनती है, न अपने आदमी को! पर पता नहीं कैसा गीदड़ बेटा है कि फिर भी उसके नखरे उठाता फिरता है। अरे सक्सेना साहब! एक हम थे कि मजाल है औरत हूँ से हाँ करदे। एक बार ऐसे ही कुछ कह दिया था, पीहर भेज दिया, और तब तक नहीं लाया जब तक उसने और उसके बाप ने नाक नहीं रगड़ी चौखट पर आकर। संयम था, तो ऐसा कर पाये। यह साले क्या करेंगे ...... रोटी से ज्यादा तो इनके लिए पाँच फीट की औरत है। सुबह ऐसी लड़ाई कि घर सिर पर, तो शाम को बने-ठने; चल दिये मटरगश्ती को। मास्टर हम भी थे, मास्टर लड़का भी है। अब यह क्या करेंगे, ज्यादा से ज्यादा आठ-दस पेन्टें और बारह-तेरह बीबी की साड़ियाँ बेटों के नाम लिख जाएँगे।

बूढ़े सक्सेना साहब बीड़ी सुलगाते हुए कहते—शर्मा जी बेटियों की शादी में चार-चार, पाँच-पाँच हजार देकर तबाह हो गया। सोचा था तीन बेटे हैं, पाँच-पाँच हजार भी मिला तो बुढ़ापा तो कट जाएगा। लेकिन किसका मिलाना जी, बड़ा तो भी इतना तो है कि दो वक्त की रोटी डाल देता है; बाकी दो तो सफा नाकारा निकल गये। कभी भूले-भटके खत आ जाता है तो यह जरूर पता लग जाता है कि दुनिया में हैं। क्या पता मरने की खबर सुनकर भी उन्हें आने की फुर्सत मिलेगी या नहीं। माँ पर तो दया कर दी थी, आ गये थे।

आ जायेंगे, तो कौन से निहाल हो जायेंगे सक्सेना बाबू, कौड़ियाँ फेंको और इन कौड़ियों को थम-थम कर उम्र काटो। मोहनलाल अग्रवाल बोलते। फिर वह अपनी आत्म-कथा की डायरी का एक सफा, दुकानदार को रट गई बोलनों की तरह, सुनाने लगते। कहते—हमें देखो ना! सब कुछ होते हुए खाली हाथ बैठे हैं। अपनों-

अपने आस-पास

सी दूकान चलती है; बेटे जी को बैठाया तो पहले तो घाटे पर घाटा दिये चले
ए, उसके बाद सुधरे तो दूकान हथिया ली। ससुराल वालों का रुपया लगवाकर उनके
गये। मैंने सोचा बाप ही आँख बदलने के लिए बाकी बचा था, पर करिश्मा उधर
ी दिखाया। उनसे भी तोड़-ताड़ कर अलग हुए। घर बनवाया है, स्कूटर भी खरीद
या है, दूकान भी शहर में नामी दूकानों में से है; पर""बस उस पर बोर्ड में नाम
रूर बाकी है, वैसे यह चौपड़ खेलो, और उम्र के दिन गिनो।

राधाकृष्ण जी इस पर फौरन अपनी टिप्पणी जोड़ते—अब क्या है अग्रवाल
ाहब, हम तो अपने बाप के कहे पर अखीर तक उठक-बैठक करते रहे। इन लड़कों
ो अपने बाप भी फालतू लगते हैं, जैसे इनके गले मढ़ गये हों। यह सब क्या जीते
? क्या इनकी ज़िन्दगी, जिन्दगी है? इनसे पूछिये तो तुम क्या करना चाहते हो?

सक्सेना बाबू फौरन राधाकृष्ण जी के भाव को आगे बढ़ा देते—यह सोचते
ी नहीं शर्मा जी! इनको क्यों-कैसे वगैरह से कोई मतलब नहीं। ज्यादा कहो तो
ह देंगे—जो रहे हैं, यही कौनसा कम बड़ा काम कर रहे हैं।

सक्सेना बाबू की बात को और साफ करते अडवानी साहब—जैसे इनके ऊपर
हर गिर पड़ा है। बढ़िया खाते हैं; बढ़िया पहनते हैं; कर्ज लेकर मौज उड़ाते हैं;
ैर-सपाटे करते हैं; फिर कहेंगे जितना आप लोगों ने खा-पी लिया उसका तो सौंवा
हिस्सा भी हमें नसीब नहीं है। अरे खाया-पिया तो कमा कर खाया, कोई खैरात के
ूते पर तो जिन्दगी काटी नहीं। पीते हैं, तो अब भी पीते हैं, पर रोते तो नहीं हैं।

पंडित राधाकृष्ण अपने तकियाकलाम को ऐसे ही मौके पर चस्पां कर देते—
अब यह क्या जियेंगे अडवानी साहब! इनकी सात पीढ़ी को जीना नहीं आएगा।

फिर कौड़ियाँ फिकने लगतीं बिसात पर बिछी हुई गोटियाँ चलने लगतीं।
चौगुटा क्लब बाजी चलाने में लग जाता। दफ्तर के छूटने का पाँच बजे का वक्त
होता, तब सब उठ जाते और सौहार्द भाव से विदा होकर अपने-अपने बेटे-बहुओं के
घर चले जाते।

□□□

7

चुनाव

□

भागीरथ भार्गव

"सुनती हो" राजकाप्रसाद ने अखबार को रखते हुए ज़ोर से कहा, "अब चुनाव शुरु होने वाले ही है। थोड़े दिन बाद........"

"चुप रहो" रसोई घर मे श्रीमतीजी की आवाज आई "जब देखो तब इन बेकार की बातों में लगे रहते हो। सवेरे से ही अखबार लेकर बैठ जाते हो। घर-गृहस्थी कुछ फिक्र ही नही है....... "

"अरे भाई" राजकाप्रसाद ने श्रीमती जी की बात काटने की कोशिश की "ये बातें बेकार नहीं हैं। हमारा भारत गणतन्त्र है। हमें प्रत्येक बात का ध्यान रखना चाहिए। स्वतंत्र देश के नागरिक के नाते अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए।"

"अच्छा, बाबा अब तो चुप रहो। सिर मत चाटो" श्रीमतीजी भीतर से झुंझलाकर बोलीं "मैं तुम्हारी तरह निखट्टू नहीं बन सकती। सबका ध्यान रखने चले हैं, घर की फिक्र भी नहीं करते हैं। सुबह-सुबह अखबार लेकर बैठ जायेंगे और फिर चाहते हैं कि मैं भी इनकी सी ही हो जाऊँ। घर का सारा काम करना पड़ता है आखिर।"

श्रीमती जी की जीभ रूपी गाड़ी जवशनो की भी परवाह न करके भागती रही। राजकाप्रसाद ने उधर ध्यान न देकर फिर अखबार उठाया। थोड़ी देर तक तो पढ़ता रहा फिर बड़बड़ाने लगा "आजकल अखबार चुनावों की ही बातों से भरे रहते हैं और कुछ बात ही नही। वहाँ से वह खड़ा हो रहा है, उसके विरोध में वह खड़ा हो रहा है, वह निर्विरोध चुना गया। और कुछ बात ही नहीं होती है जैसे दुनियाँ मे ! यूँ ही पैसे बरबाद जाते हैं।

राजकाप्रसाद ने अखबार रख दिया। पर मन नहीं माना और कुछ समय बाद ही फिर उठाकर पढ़ने लगा। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि श्रीमतीजी की गर्जना सुनायी पड़ी "अखबार को छोड़ेंगे या नहीं ?"

राजकाप्रसाद ने अखबार रख दिया और भीतर चल दिया। अभी दो-एक कदम ही चला होगा कि बाहर से आवाज आई "राजकाप्रसादजी ! राजकाप्रसादजी !!

राजकाप्रसाद रुका और बोला "कौन है ?" तथा फिर अपनी बैठक में आ गया। इतने में आगन्तुक भी आ गये। आने वाले तीन थे। एक ओमप्रकाशजी और दो उनके साथी।

भीतर श्रीमती जी बड़बड़ाने लगीं "तंग हो गई मैं तो। अब बड़ी मुश्किल से तो आ रहे थे सो किसीने फिर बुला लिया······"

बाहर राजकाप्रसाद ने ओमप्रकाशजी से नमस्ते की और बोला "कहिए क्या काम है ? कैसे पधारे ? बैठिये न ! खड़े क्यों हैं आप !"

ओमप्रकाशजी बैठ गये और अपने सहायकों से बोले—"अरे प्रमोद बैठ न और शिब्बू तू भी बैठ जा, खड़ा क्यों है ? इसे अपना ही घर समझो। बिना कहे ही बैठ जाओ। यहाँ कुर्सी तो है नहीं, दरी पर ही बैठना होगा।"

प्रमोद और शिब्बू बैठ गये। अब ओमप्रकाशजी अपने मतलब पर आये "राजकाप्रसाद, तुम्हें तो मालूम है ही कि चुनाव होने वाले हैं।"

राजकाप्रसाद ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

"शायद तुम्हें मालूम नहीं" ओमप्रकाशजी आगे बढ़े "कि मैं भी खड़ा हो रहा हूँ।"

"अच्छा" राजकाप्रसाद ने कृत्रिम प्रसन्नता से कहा "विधान सभा के लिए खड़े हुए हैं आप या लोकसभा के लिए ?"

"इस बार तो विधानसभा ही सही ?" ओमप्रकाशजी ने उत्तर दिया "अगले चुनाव में संसद की सीट पर हाथ मारेंगे।"

"ठीक है" राजकाप्रसाद ने कहा "आपकी बात ठीक है।"

"यही कहना था" ओमप्रकाशजी ने कहा "वोट तो अपनी है ही। चलो भई प्रमोद और शिब्बू।"

ओमप्रकाशजी हँसते हुए उठे और प्रमोद, शिब्बू के साथ चले गये। राजकाप्रसाद भी उठा और बड़बड़ाते हुए चल दिया ' आज सेठजी ऐसी बातें कर रहे हैं

पर मैं क्या उस दिन को भूल गया हूँ जब उन्होंने मेरी मजबूरी पर तनिक भी ध्यान दिये बिना उधार देने से इनकार कर दिया था। मैं केवल गिड़गिड़ाता रह गया था। धन्य है चुनाव की माया कि जो सेठ साहब बात भी न करते थे, वे घर तक आवे।"

अभी राजकाप्रसाद भीतर पहुँचा ही था कि बाहर से आवाज आई "राजकाप्रसादजी ! राजकाप्रसादजी !!" स्वर पहले वाला न था "अब कौन साहब आ गये" राजकाप्रसाद झुंझलाकर बाहर आया "अब इसी तरह ये उम्मीदवार तंग करा करेंगे इस समयसब दीन-पालक, जनता के सेवक तथा देश-भक्त बन जाते हैं, परन्तु चुने जाने के बाद बोलते भी नहीं हैं।"

बाहर आकर देखा कि डॉक्टर साहब दो सहकारियों के साथ बैठे हैं। "कहिए कैसे आने की कृपा करी ?" राजकाप्रसाद ने कहा।

"तुम तो जानते ही हो" डॉक्टर साहब ने हँसते हुए कहा "कि चुनाव होने वाले हैं और मैं भी चुनाव में विधान सभा के लिए खड़ा हो रहा हूँ। मैं आप लोगों की सेवा के लिए ही खड़ा हुआ हूँ। चाहता हूँ कि आप लोगों का कुछ भला हो जावे।"

"ठीक कहते हैं आप" राजकाप्रसाद ने कहा।

"बस इतना ही कहना था, वोट तो हमे देंगे ही आप" डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए। उनके सहकारी भी खड़े हो गये और डॉक्टर साहब अपने सहकारियों सहित चले गये।

राजकाप्रसाद वहीं बैठा रहा और बड़बड़ाता रहा "आज डॉक्टर साहब सेवा के लिए इतने आतुर हो रहे हैं पर उस दिन की बात शायद भूल गये हैं जबकि उन्होंने एक युवक को जिसकी बूढ़ी माँ बीमार थी, पैसा कम होने के कारण अपनी डिस्पेन्सरी से निकाल दिया था। खैर, देखें कौन साहब और आते हैं।"

थोड़ी देर बाद ही एक साहब आ गये। ये वकील साहब थे और साथ में सहकारी बना हुआ मशहूर गुण्डा रामेश्वर भी।

"वैठिए, कैसे इस घर को पवित्र किया" राजकाप्रसाद ने रुकते स्वर में कहा। वकील साहब व्यंग पी गये। बोले "भाई चुनाव के सिलसिले में आया हूँ।"

"अच्छा आप भी खड़े हो रहे हैं" राजकाप्रसाद ने व्यंग कहा "संसद के लिए खड़े हुए हैं आप ?"

वकील साहब फिर व्यंग पी गये। बोले "नहीं भाई, इस बार तो विधानसभा का ही विचार है। अगली बार संसद का विचार करेंगे। चलो भाई, बस यही कहना था। वोट तो अपना है ही।"

अपने काम-धाम

"जी नहीं" राजकाप्रसाद ने कहा—"मैं वोट देने का वादा कर चुका हूँ।

वकील साहब रुक गये। बोले "किसको वोट देने का वादा किया है ?"

"सेठ श्रीमप्रकाशजी से वादा कर लिया है ?" राजकाप्रसाद ने उत्तर दिया।

"तो आप सेठजी को वोट देंगे ?" वकील साहब ने पूछा।

"हाँ" राजकाप्रसाद ने उत्तर दिया।

"किस पार्टी से खड़े हो रहे है सेठजी ?"

"मुझे मालूम नहीं"

"तब यों ही आपने वादा कर लिया है ?"

"हाँ" राजकाप्रसाद ने झुंझलाकर कहा।

रामेश्वर तब तक किसी तरह चुप था। अब उससे न रहा गया, बोला "तुम सेठसाहब को वोट नहीं दे सकते।"

"क्यों" राजकाप्रसाद ने पूछा।

"मेरी मरजी"

"वाह ! वोट हमारी और मरजी तुम्हारी, यह कैसे हो सकता है ? जबरदस्ती वोट लोगे ?"

"हाँ" रामेश्वर ने कहा और खड़ा हो गया "चलो वकील साहब दूसरी जगह चलो। टाइम थोड़ा है" और फिर राजकाप्रसाद की तरफ बढ़ा। "याद रखना मेरा नाम रामेश्वर है, सारा शहर मुझे जानता है। अगर वोट किसी और को दे दी तो खैर न रहेगी।"

वकील साहब और रामेश्वर चले गये, राजकाप्रसाद भी उठा और भीतर की ओर बढ़ा।

"आज दफ्तर नहीं जाएँगे क्या ?" श्रीमती जी की आवाज आई। "आ तो रहा हूँ भाई" राजकाप्रसाद ने उत्तर दिया "अभी-अभी जान से मारने की धमकी मिली है।"

श्रीमतीजी तूफानी वेग से बाहर आई। उनके हाथ आटे में हो रहे थे। चेहरे पर घबराहट थी, बोलीं "क्या बात है ?"

"कुछ नहीं" राजकाप्रसाद ने हँसते हुए कहा।

"बताते क्यों नहीं हो ?" श्रीमतीजी की आँखों में आँसू झलकने लगे।

"यह लो साहब" राजकाप्रसाद ने कहा "रोने ही लग गई। अरे कोई बात भी हो !"

"क्या है ?"

"अभी तो कह रहे थे।"

"अच्छा अब समझा" राजप्रसाद ने कहा "इतनी सी बात पर रोने लग गई। सुनो! अभी वकील आये थे, कहने लगे कि वोट हमें देना। मेरे इन्कार करने पर उनके सहचारी रामेश्वर ने वकील साहब को वोट न देने पर जान से मारने की धमकी दी है। बस साहब इतनी सी बात है।"

"वोट वकील साहब को ही दे देना" श्रीमतीजी कुछ निश्चिन्तता से बोलीं।

राजप्रसाद गम्भीर हो गया। बोला "वोट कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे यों ही दे दिया जाए। वोट योग्य उम्मीदवार को ही मिलना चाहिए। वकील साहब को वोट देने की अपेक्षा मैं किसी को भी वोट न देना अच्छा समझता हूँ। वोट अमूल्य चीज है।"

श्रीमतीजी ने सुना तो फर्श पर बैठ गईं और आँसू गिराती हुई बोलीं "नहीं, तुम वकील साहब को ही वोट देना। उस रामेश्वर का कोई ठिकाना नहीं है और अगर क्रुद्ध हो जाये तो।"

श्रीमतीजी ने अब सिसकियाँ लेनी शुरू कर दीं। हारकर राजप्रसाद ने कहा "अच्छा भाई! वकील साहब को ही वोट देंगे, अब तो खुश हो ना!"

श्रीमतीजी उठीं और रसोईघर में चली गईं और राजप्रसाद बाथरूम की ओर चल दिये। वे सोच रहे थे—क्या श्रीमतीजी की या अन्य किसी की बात या दबाव वोट के बारे में मानना चाहिए?

□□□

8
अनुभूतियाँ

□

मशीयत अली

[१]

जैसे ही रामू ने घर में प्रवेश किया, उसका चार-वर्षीय बच्चा रवि दौड़कर उसकी टाँगों से लिपट गया और पूछने लगा—"बापू ......बापू......हमारे लिये क्या लाये ?"

"वाह बेटे ! रोज ही टॉफी खाते हो और रोज ही पूछते हो क्या लाये ?" रामू ने अपने बेटे को गोद में लेकर अपनी जेब से टॉफी देते हुए कहा।

"आप इसकी आदत बिगाड़ देंगे। रोज कुछ न कुछ लाकर देते ही रहते हैं।" रामू की पत्नी पारो ने झुँझलाकर कहा।

"पारो ! एक ही बच्चा है, अगर उसकी भी इच्छाएँ पूरी नहीं कर सका तो मेरा जीना बेकार है।" रामू ने कहा।

"आप ठीक ही कहते हैं। मैं अब माँ नहीं बन सकती। लेन्दे के एक ही तो बच्चा है, लेकिन फिर भी डरती हूँ कि आपका ज्यादा लाड़-प्यार कहीं इसको बिगाड़ न दे।" पारो ने रामू को तौलिया देते हुए कहा।

"छोड़ो बेकार की बातें ...... देखो ! तुम्हारा लाड़ला कितने प्यार से टॉफी खा रहा है। अच्छा तुम खाना निकालो बहुत भूख लग रही है।" रामू ने रवि को पारो की गोद में देते हुए कहा और स्वयं तौलिया लेकर बाहर नल पर हाथ मुँह धोने चला गया।

पारो ने रवि को गोद से नीचे उतारा और खाना लेने अन्दर चली गई।

यह परिवार मजदूर कालोनी में रहता था। रामू एक सुलझे विचारों का व्यक्ति था और पास की फैक्ट्री में एक मशीन पर कार्य करता था। रामू की पत्नी पारो भी सुलझे विचारों की नारी थी। मजदूर कॉलोनी में जब किसी पति-पत्नी में

"रहने दो श्याम ! मेरी इच्छा नहीं है।" रवि ने बात को टालते हुए कहा।

"देखो रवि, अगर तुम्हें हमारी कम्पनी में रहना है तो तुम्हें वह सब शौक अपनाने होंगे जो हम लोग करते हैं। वरना तुम अभी भी हमारी कम्पनी छोड़ सकते हो।" वी. के. ने सिगरेट के घूँट के छल्ले बनाते हुए कहा।

वी. के. ठीक कहता है रवि। हम लोग उसी आदमी को कम्पनी में लेंगे जो हमारे साथ एडजस्ट हो सकेगा।" श्याम ने बात का समर्थन करते हुए कहा।

"लेकिन यार वह चीज़ ठीक भी तो नहीं।" रवि ने धीरे से कहा।

"कुछ हमारी कम्पनी के वास्ते और कुछ फैशन के नाम पर ······।"

वी. के. ने रवि को धीमे पड़ते देखकर अपनी आवाज़ को प्रभावशाली बनाते हुए कहा और सिगरेट जलाकर रवि की ओर बढ़ा दी। रवि ने झिझकते हुए सिगरेट हाथ में ले ली और पहला कश लगाते ही खाँसता-खाँसता नीचे की ओर झुक गया।

"कोई बात नहीं डीयर······। पहला चांस है न······धीरे-धीरे आदत पड़ जायेगी।"वी के. ने रवि की पीठ सहलाते कहा।

धीरे-धीरे रवि को सिगरेट पीने की आदत पड़ गयी। इसके साथ-साथ वी के. की कम्पनी में एडजस्ट होने के लिए उसने उनकी दूसरी बातों में भी साथ देना प्रारम्भ कर दिया। चरस, गाँजा, भांग और अफीम आदि उन लोगों के लिए छोटी-मोटी वस्तुएँ हो गई। क्लास कभी-कभी अटेण्ड करने अवश्य चले जाते थे जिससे अटेण्डेन्स कम न हो जाए। इन मादक पदार्थों ने रवि के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया। एक सुन्दर और सुडौल शरीर धीरे-धीरे अस्थियों के ढाँचे में बदलने लगा। चेहरे पर पीलापन······आँखों के स्याह गड्ढे······। इन सबको देखकर रवि के पिता रामु और माँ पारो सोचते—शायद कालेज की पढ़ाई कठिन है और इस पढ़ाई को पूरा करने में मेहनत करने के कारण रवि की यह हालत हो गई है।

एक साल बीत गया। प्रथम वर्ष (टी. डी सी फर्स्ट ईयर) की परीक्षा हो चुकी थी और सभी विद्यार्थी परीक्षा-फल की प्रतीक्षा कर रहे थे। आखिर वह दिन भी आ गया जिस दिन अखबार में प्रथम वर्ष का परीक्षा परिणाम घोषित हुआ। रवि ने अपना रिजल्ट देखा लेकिन······वह फेल था। उसका रोल नम्बर अखबार में कहीं नहीं था। उसके साथ ही वी. के., श्याम और कुमार का रोल नं० भी अखबार में कहीं नहीं था। रवि अपने हाथों के बीच अपना चेहरा छुपा कर सिसकने लगा। उसकी सिसकियों की आवाज़ पर माँ दौड़ती हुई आई और पापा

आगे पृष्ठ-पर

"रवि बेटा...... । क्या बात है ...... ? क्यों रो रहे हो ?"

रवि ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, केवल सिसकियाँ लेता रहा।

"रवि बताओ तो सही क्या बात हो गयी है?" पारो ने जिद करते हुए पूछा।

"माँ ...... मैं ...... फेल...... हो गया ......।" रवि ने पारो से लिपटते हुए कहा।

पारो एकदम सन्नाटे मे आ गयी। उसको ऐसा लगा जैसे उसकी आँखों की झिलमिलाती हुई रोशनी अन्धेरे मे परिवर्तित हो गयी हो। वह चुपचाप खड़ी-खड़ी रवि का कन्धा थपथपाती रही। शाम को जैसे ही रामू फैक्ट्री से घर आया, पारो ने खाना खिलाते हुए रवि की असफलता के बारे मे बता दिया। रामू को बहुत दुःख हुआ। उसने पारो से कहा—

"पारो ! उसको कुछ न कहना। उसने मेहनत कितनी की है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। अपना सारा स्वास्थ्य पढ़ाई की भेंट चढ़ा दिया है। शायद भगवान की मर्जी यही थी।"

"क्यों भगवान को दोष देते हो ? आपको क्या मालूम कि उसने मेहनत की है या नहीं। आप कॉलेज जाकर तो कभी देखते नहीं थे।"

पारो ने अपना चेहरा घुटने पर रखते हुए कहा।

"नहीं पारो नहीं" मेरा विश्वास मुझे धोखा नहीं दे सकता।" रामू ने कहा।

"भगवान करे ऐसा ही हो।" पारो ने भोजन की थाली उठाते हुए कहा।

रामू धीरे-धीरे चलता हुआ रवि के पास पहुँचा और कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"रवि बेटे ! मैं जानता हूँ तुमने कितनी मेहनत की थी और तुम केवल इसी कारण से दु:खी हो कि भगवान ने तुम्हारे परिश्रम का फल नहीं दिया। कोई बात नहीं बेटे" इस साल नहीं तो न सही ""अगले वर्ष तुम्हारी मेहनत रंग लायेगी।" और रामू धीरे-धीरे बाहर की ओर निकल गया।

रवि सोचने लगा—"मेरे बापू को मेरे ऊपर कितना विश्वास है। वह तो यही समझते हैं कि मैंने मेहनत की है लेकिन मैं " मैं जानता हूँ कि मैंने क्या किया "? मैंने अपने माता-पिता की आशाओं के महल को चूर-चूर कर दिया। कितना प्यार करते हैं मुझसे""मेरे लिए उन्होंने क्या किया " मेरी हर इच्छा को पूरा किया। लेकिन मैंने ""।" यह सब सोचकर रवि रो पड़ा। उसकी आँखों से पश्चाताप के आँसू बहने लगे। धीरे-धीरे सुबकियाँ लेते हुए वह निद्रा देवी की गोद में चला गया। दूसरे दिन सुबह जब वह उठा तो उसके मन मे आशाओं के सुमन मुस्करा रहे थे। हृदय नई उमंगों से भरा हुआ था। कुछ करने की तमन्ना लिए " अपनी असफलता को

सफलता में बदलने के सपने लिए""वह हाथ-मुँह धोने नल की ओर चल दिया। यह थी दूसरी अनुभूति जो उसे सफलता की राह पर ले जाकर जीवन को नये रूप में मोड़ देना चाहती थी।

[३]

आखिर समर वेकेशन्स समाप्त हो गई। कालेज भी खुल गये। कालेज में फिर कुछ नये चहरे दिखाई दे रहे थे और कुछ पुराने। जैसे ही रवि कालेज के गेट को पार कर लायब्रेरी की ओर मुड़ा कि पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा कि वी. के., श्याम और कुमार सामने लॉन में बैठे उसे पुकार रहे हैं। वह लायब्रेरी न आकर उनकी ओर मुड़ गया।

"अरे भाई"'यह क्या""? आज पहले ही दिन में मोहर्रमी सूरत क्यों बना रखी है ? अरे यार ! आज तो वेकेशन्स के बाद कॉलेज का पहला दिन है।" कुमार ने मुस्कराते हुए कहा।

"सुनाओ डियर छुट्टियाँ कैसी गुजरी ? हम तीनों कश्मीर चले गये थे"' बस "मजा आ गया। तुम भी कहीं गये या नहीं ?" वी. के. ने पूछा।

"नहीं वी. के.—मैं कहीं नहीं जा सका। अपनी असफलताओं का चेहरा लेकर कहाँ जाता ?" रवि ने ठंडी साँस भर कर कहा।

"डीयर पहले ही साल में घबरा गये। अरे हमको देखो, एक क्लास में तीन-तीन साल हो गये हैं; फिर भी हम मस्त रहते हैं।" वी. के. ने हँस कर रवि के कन्धे पर हाथ मारते हुए कहा।

"प्यारे रवि ! हम कॉलेज में सिर्फ मनोरंजन के लिए आते हैं। अगर हमारे जैसे पढ़ने लगें तो दूसरों का भविष्य अन्धकारमय हो जाये।" श्याम ने चिलम में गाँजा भरते हुए कहा।

"लेकिन श्याम""""कालेज आने के उद्देश्य यही है—पढ़ाई करना"'कोई अच्छी डिग्री प्राप्त करना""""और फिर नौकरी तलाश कर अपनी जीविकोपार्जन करना।" रवि ने हिचकिचाते हुए कहा।

"रवि प्यारे ! हम तो सिर्फ डिग्री खरीदना जानते हैं""" जो पढ़ाई से नहीं"""पैसों से मिलती है"""सिर्फ पैसों से"""और फिर हमें कौनसी नौकरी करनी है।" श्याम ने चिलम कुमार की ओर बढ़ाते हुए कहा।

"लेकिन मैं तो गरीब लड़का हूँ। मुझे पढ़ाई करनी चाहिये। मेरे माता-पिता को मुझसे क्या-क्या आशाएं हैं ? मेरा भी तो उनके प्रति कुछ फर्ज है।" रवि ने नीचे बैठते हुए।

आगे पास-पास

"तुम्हे पढ़ाकर वह अपना फर्ज पूरा कर रहे हैं, कोई अहसान नहीं कर रहे!" कुमार ने चिलम रवि की ओर बढ़ाते हुए कहा।

"नो थैंक्स....मैं ये सब छोड़ चुका हूँ।" रवि ने फीकी मुस्कान के साथ कहा।

"क्या... क्या कहते हो रवि! यानि तुम हमारी कम्पनी छोड़ना चाहते हो।" बी. के. ने आँखें चौड़ी करते हुए कहा।

"नहीं नहीं....ऐसी बात नहीं है। मैं तुम लोगों के साथ दोस्ती भी रखना चाहता हूँ और साथ ही पढ़ाई भी करना चाहता हूँ।" रवि ने हाथ की किताबें जमीन पर रखते हुए कहा।

"इम्पॉसीबल... हमारी पढ़ाई से सदा दुश्मनी रही है। हमारी कम्पनी में रहकर तुम पढ़ाई जारी नहीं रख सकोगे रवि!" बी. के. ने झुंझलाकर के कहा।

"ऐसा तुम समझते हो बी. के....मैं ऐसा नहीं समझता। अच्छा अब मैं चलता हूँ।" रवि ने घास पर बिखरी किताबें समेट कर उठते हुए कहा।

"जा तो रहे हो रवि, पर इतना ध्यान जरूर रखना कि तुम यह कम्पनी नहीं छोड़ सकोगे। तुम्हें कुछ दिन बाद हमारे पास वापिस आना पड़ेगा।" बी. के. ने भी खड़े होते हुए कहा।

रवि ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और वह लायब्रेरी में घुस गया। वह तीनों खड़े-खड़े उसे जाते हुए देखते रहे।

रवि अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो गया। अब तो केवल उसे दो ही काम थे। घर से कालेज जाना और कालेज से घर। पढ़ाई में व्यस्त रहते हुए उसे एक महीना भी व्यतीत नहीं हुआ था कि एक घटना ने उसके जीवन की धारा फिर बदल दी। घटना यह थी कि उसकी कक्षा की एक छात्रा ने रवि के ऊपर पाँच सौ रुपये चुराने का अभियोग लगा दिया जो कि वह अपनी फीस जमा कराने के लिए लाई थी। भाग्य से तलाशी के समय वे रुपये रवि की एक पुस्तक से बरामद भी हो गये। यह केस प्रिंसीपल तक पहुँचा। रवि ने अपनी सफाई में बहुत कुछ कहने का प्रयास किया लेकिन प्रिंसीपल ने एक भी न सुनी और रवि का पन्द्रह दिन के लिए कॉलिज से रेस्टीकेशन कर दिया। केवल रेस्टीकेशन ही नहीं किया बल्कि पूरे कॉलिज के लड़कों के सामने उसकी काफी बेइज्जती भी की। इस घटना ने रवि के मस्तिष्क पर बहुत प्रभाव डाला और उसके हृदय में प्रतिशोध का ज्वालामुखी धधकने लगा। यह घटना चक्र बी. के. का चलाया हुआ था। वह नहीं चाहता था कि रवि उनकी कम्पनी छोड़ जाये। इस घटना का लाभ भी बी. के. ने ही उठाया। उसने रवि को बहुत उत्तेजित किया ताकि उसके हृदय का ज्वालामुखी फट जाये। वह अपने

प्रयास में सफल भी हो गया। बी. के. के भड़काने पर रवि ने एक अंग्रेजी र
प्रिंसीपल के मुँह पर कपड़ा डाल कर पिटायी भी करदी। इस घटना ने तूल
पकड़ा लेकिन बहुत कोशिश करने के बाद भी पुलिस यह पता नहीं लगा पा
प्रिंसीपल की पिटाई करने वाला कौन व्यक्ति था ?

रवि एक बार फिर रास्ते से भटक गया। फिर से सिगरेट, शराब गांज
और अफीम की लत उसने डाल ली। इन वस्तुओं में डूबे रहने के पश्चात् भी
हृदय अनजानी आशंका से कांपता रहता था""एक अनजाने अपराध के प्रायश्चि
कारण""कुछ पता नहीं। एक दिन रवि कालेज के बोटनिकल गार्डन में बैठा
सोच रहा था कि अचानक बी. के. वहाँ आ गया और कहने लगा—

"रवि" आजकल मैं देख रहा हूँ कि तुम कुछ उदास से रहते हो। मैं
तुम्हारा रेस्टीकेशन पीरियड भी समाप्त हो गया है। तुम रेगुलर क्लासेज भी
कर रहे हो"" फिर इतनी चिन्ता क्यों ?"

"मैं सोच रहा था कि कुछ पार्ट टाइम जॉब मिल जाता तो अच्छा रह
कुछ पाकेट एलाउन्स निकल आता ""। बार बार बापू से पैसे मांगना अच्छा
लगता।" रवि ने उदासी से कहा।

"मैं तुम्हें एक राजनैतिक पार्टी में काम दिलवा सकता हूँ"लेकिन""
कुछ खतरनाक भी हो सकता है""क्योंकि तुम जानते हो कि पार्टीबाजी का
ही कुछ ऐसा होता है।" बी. के. ने आँखें नचाते हुए कहा।

"ना बाबा ना""ये पार्टीबाजी मुझे तो बिल्कुल पसन्द नहीं है। एक
एक पार्टी है जो गरीबी हटाओ का नारा लगाती है। बी. के. सोचो गरीबी हट
मिटाओ नहीं, यानि कि गरीबी को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रख
लेकिन जड़ से मिटाना नहीं है। और कभी समाजवाद का नारा लगाकर पूँजीपति
की तिजोरियों को भरने में मदद कर रही है। कहीं ऐसे नारे लगाने से समाज
आ सकता है भला। दूसरी ओर दूसरी पार्टी है जो अपना काम निकालने में
हुई है। ऐसी पार्टियों से मुझे सख्त नफरत है।" रवि ने झुंझलाकर सिर हि
हुए कहा।

" ""डीयर, नाराज क्यों होते हो ! मैं जिस पार्टी की बात कर रहा हूँ
ऐसी पार्टी नहीं है। हाँ मौके का फायदा उठाना अच्छी प्रकार से जानती है
रवि की झुंझलाहट पर बी. के. ने हँसते हुए कहा। "ठीक है, मुझे पार्टी से
मतलब ? अपने काम से मतलब और अपने पैसे लेने से। चलो मैं तैयार हूँ।" रवि
उठते हुए कहा।

.......और रवि को पार्ट टाइम जॉब मिल गया। उसकी पढाई भी अब कुछ ठीक चलने लगी। बहुत प्रयास करने पर उसने नशीली वस्तुओं का सेवन बन्द कर दिया। लेकिन सिगरेट की लत उससे ऐसी चिपकी कि वह उसको न छोड़ सका। हाँ, कम अवश्य कर दी थी। पार्टी के ऑफिस के कार्य मे रवि अधिकतर व्यस्त रहता। उसे बी. के., श्याम और कुमार से मिलने का समय भी नही मिल पाता था। एक दिन उसने सुना कि श्याम शराब के नशे मे कार चलाते हुए एक ट्रक से टकरा गया और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। रवि को श्याम की मृत्यु का बहुत दुःख हुआ।

समय बीतता गया। अचानक शहर मे साम्प्रदायिक दंगे फैल गये। स्थान-स्थान पर कत्ल.....माँ-बहनो की लुटती हुई अस्मत.....खून ही खून.....और इन सबका लाभ उठा रहे थे कुछ असामाजिक तत्व। रवि को भी पार्टी के कुछ सदस्यों ने इन सबके विरुद्ध भडका दिया और हाथ मे टाइम बम देकर एक फैक्ट्री को उड़ाने भेज दिया, केवल इस कारण से कि फैक्ट्री का मालिक अन्य धर्मावलम्बी था। पहले तो रवि बहुत घबराया परन्तु जैसे ही उसके कानो मे बच्चों की चीखें और अबलाओं की कराहे पडी तो वह तडप उठा और उसके कदम फैक्ट्री की ओर उठ गये। फैक्ट्री के अन्दर किसी अनजान व्यक्ति को जाने की इजाजत नहीं थी लेकिन चूंकि रवि का पिता रामू उसी फैक्ट्री मे काम करता था, अत: उसे फैक्ट्री मे घुसने से किसी ने नही रोका। उसने एक मशीन के नीचे छिपाकर टाइमबम सैट किया और आधे घंटे का समय फिक्स करके अपने पिता के पास आ गया। फिर अपने पिता को लेकर बात करता हुआ फैक्ट्री से बाहर आ गया। रवि अपने पिता को बचाना चाहता था, इस कारण से उन्हें साथ लेकर फैक्ट्री सीमा से बाहर निकलने का प्रयास करने लगा, लेकिन फैक्ट्री का समय होने के कारण रामू ने फैक्ट्री से दूर जाने के लिए मना कर दिया। अत. रवि अपने पिता को लेकर समीप की चट्टान की ओट मे खडा हो गया। और वहाँ पर बात करते हुए समय काटने लगा।

ठीक आधे घन्टे बाद..... एक जोर का धमाका हुआ। रामू और रवि एक चट्टान की ओट मे लेट गये। फैक्ट्री के बडे बडे उडते हुए टुकडे और उड़ती हुई धूल ने वातावरण को चारों ओर से ढक लिया। एक पत्थर का बडा सा टुकडा तेजी से उडता हुआ आया और लेटे हुए रामू की टाँग मे जोर से लगा। रामू चीख मारकर बेहोश हो गया। कुछ छोटे-छोटे टुकड़े रवि के शरीर पर भी लगे जिससे उसके शरीर मे स्थान स्थान पर जख्म हो गये और उनसे रक्त बहने लगा। अधिक रक्त बह जाने के कारण रवि भी बेहोश हो गया।

होश आते ही रवि की नाक मे एक तीखी गंध घुसी जिससे उसने अन्दाजा लगाया कि वह अस्पताल मे है। धीरे-धीरे वह ठीक होने लगा। उसके पिता रामू

की टांग पर प्लास्टर चढ़ाया हुआ था, क्योंकि पत्थर लगने से उसकी टांग टूट गई थी। फैक्ट्री के बहुत से मजदूर अस्पताल में भरती थे। कितनों की मृत्यु हो गई थी, यह बताना कठिन था किन्तु जितने भी मजदूर अस्पताल में थे किसी की दशा ठीक नहीं थी। किसी की टांग टूटी थी……तो किसी का हाथ……कोई अपनी आंख पर पट्टी बांधे बैठा था… तो कोई बच्चे को पकड़े हुए कराह रहा था। मजदूरों के बच्चों की हिचकियां और उनकी पत्नियों का रुदन रवि के कानों में पड़ रहा था जो चीख-चीख कर उस पापी को शाप दे रहे थे जिसने उनके परिवारों की ये हालत की थी। ये दृश्य रवि से देखे नहीं जा रहे थे। अचानक उसे किसी के आने की आहट सुनाई दी। उसने आंखें खोल कर देखा तो उसके पिता रामू पास ही लाठी का सहारा लेकर खड़े थे।

"बैठो बापू!" रवि ने उठते हुए कहा।

"हां बेटे, अब बचा ही क्या है? शांति से बैठना और अपनी किस्मत पर रोना।"

"लेकिन बापू हुआ क्या आप इतने दुखी क्यों हैं?"

"क्या नहीं हुआ रवि बेटे……तुमने दर्द से तड़पते हुए मजदूरों को नहीं देखा……चीखें मारकर रोते हुए मासूम बच्चों को नहीं देखा जो अपने पिता से लिपट कर रो रहे थे और बिलखती हुई औरतों को नहीं देखा जो अपने पतियों के अच्छा होने की प्रतीक्षा में भूखे रह कर अपने दिन काट रही हैं। बेटे! मजदूरों की हालत ज्यादा अच्छी नहीं है। न जाने कितने मरे और कितने घायल हुए, कुछ पता नहीं चला……। न जाने किस पापी ने यह काम किया है। अगर वह मुझे मिल जाये तो अपने हाथों से गला दबा दूं।" रामू ने क्रोध से उफनते हुए कहा।

"लेकिन बापू आजकल साम्प्रदायिक दंगे चल रहे हैं, हो सकता है किसी ने झगड़े का फायदा उठाया हो।" रवि ने अनजान बनकर कहा।

"जो कुछ भी हुआ है, ठीक नहीं हुआ है रवि……। यह तो बुरी खबर है ही, लेकिन मैं तुम्हें इससे भी बुरी खबर सुनाना चाहता हूं।"

"क्या हुआ बापू……?" रवि से घबरा कर पूछा।

"तुम्हारा दोस्त वी. के. एक फैक्ट्री को बम से उड़ाते हुए पकड़ा गया, जहां से उसे जेल भेज दिया गया है और जेल में उसने आत्महत्या कर ली।" रामू ने गम्भीर स्वर में कहा।

"नहीं……नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" रवि ने चीखते हुए कहा।

"एक और खबर"......तुम्हारा दोस्त कुमार नशीली वस्तुओं की स्मगलिंग में पकड़ा गया और आजकल जेल में है।" यह कह कर रामू वहाँ से चल दिया।

"उफ़"......ऐसा कैसे हो गया......?" रवि दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ते हुए बड़बड़ाया।

"सफेद कपड़ों में छिपे हुए लोग इतने पापी हो सकते हैं! मेरी पार्टी के लोग भी कितने कमीने हैं......कैसे मौके का फायदा उठाया है। मैं तो पार्टी वालों के हाथ मात्र कठपुतली बनकर रह गया। मैं अब कभी पार्टी के आफिस नहीं जाऊँगा। न जाने कितनी बहनों के भाई मैंने छीन लिये हैं......कितनी सुहागिनों को विधवा बनाया है......और कितने ही मासूम बच्चों को रुलाने का कारण मैं हूँ......केवल मैं......! यह पाप क्यों किया......क्यों? बी. के. और कुमार भी इतने गिरे हुए थे, यह कभी मैंने सोचा भी न था......क्यों भटक गया मैं अपनी राह से......।" यह सब सोचते-सोचते रवि की आँखों में पश्चाताप के आँसू चमकने लगे। ये आँसू वास्तव में इस बात की गवाही दे रहे थे कि रवि को अपने किये पर वास्तव में पश्चाताप हो रहा है।

धीरे-धीरे शहर का दूषित वातावरण भी ठीक हो गया। अस्पताल से बहुत से लोगों को डिस्चार्ज कर दिया गया, इनमें रवि और रामू भी थे। रामू के पैर का प्लास्टर खुल चुका था लेकिन उसकी चाल में लँगड़ापन आ गया था। ऐसा लगता था जैसे बेटे के किये की सज़ा बाप को भुगतनी पड़ रही है। रवि जब लौटकर घर आया तब उसके विचार बदल चुके थे। यह थी तीसरी अनुभूति जो उसके जीवन को नया सँवार कर पूर्णो में उसके जीवन की ज्योति भरना चाहती थी। घर पहुँचकर रवि ने अपने पिता से कहा—

"बापू, अब मैं नौकरी करना चाहता हूँ। मैं अब आगे पढ़ना नहीं चाहता।"

"लेकिन बेटे हमारी आशाएँ और इच्छाएँ......उनका क्या होगा!"

"कुछ नहीं बापू! अब बुढ़ापे में मैं आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता। मैं स्वयं मेहनत करूँगा और आप घर पर रहना। आपने मुझे इतना पढ़ा कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया अब मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहता हूँ।"

"ठीक है बेटे......जैसा तुम ठीक समझो! मुझे कोई एतराज़ नहीं है। मैं भी अभी बिल्कुल बेकार नहीं हूँ। दोनों बाप बेटे एक ही फैक्ट्री में काम करेंगे।" रामू ने हँसते हुए कहा।

"नहीं बापू, आप काम नहीं करेंगे।" रवि ने ज़िद करते हुए कहा।

'बेटे, बुड्ढा आदमी घर बैठा हुआ अच्छा नहीं लगता। मैं भी काम करूँगा तो इसमें बुराई क्या है।"

"ठीक है, जैसी आपकी मर्जी।" रवि ने हार मानते हुए कहा।

'तो फिर कल फैक्ट्री मैनेजर के पास चलेंगे। पुराने मजदूरों को तो उन्होंने काम पर रख ही लिया है और कुछ नये मजदूरों की तथा बाबुओं की उन्हें आवश्यकता है। मुझे कहीं न कहीं लगा ही देंगे।" रामू ने पूर्ण विश्वास से कहा।

दूसरे दिन रामू, रवि को लेकर फैक्ट्री पहुँचा, फैक्ट्री में आवश्यकता तो थी ही......और रवि तो हायर सैकण्डरी पास था। उसे क्लर्क की पोस्ट पर रख लिया गया। शाम को रवि और रामू घर लौटे तो दरवाजे पर माँ उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने मुस्करा कर दोनों का स्वागत किया। रात को जब तीनों भोजन करने बैठे, उस समय तीनों के चेहरे ताजा गुलाब की भाँति खिले हुए थे, मन में कार्य करने का दृढ़ संकल्प था और आँखों में झूल रहे थे अनगिनत बहारों के सपने......।

□□□

9

माँ लौटेगी

□

हिरण्मयी शर्मा

तब वह पत्थर की चौकी पर रखी रोटी रखे खा रही थी। मछली की गन्ध पड़ौस से आकर उसके मन को उधर खींच रही थी। लेकिन दस वर्षीया अमिता के भाग्य में केवल पड़ौस की गन्ध ही लिखी थी। जब उसके पिताजी जीवित थे, उसको मछली और अच्छे चावल मिल जाते थे। पर पिछले दो वर्षों से विधवा माँ उसको यह सब दे देती थी, वही क्या कम था। चक्रवर्ती जी के घर दोनों समय झूठे बरतन मलने और चटर्जी के घर भाड़ू बुहारा करने पर कहीं दोनों माँ बेटी का पेट जैसे तैसे पल रहा था। परन्तु ईश्वर को यह भी कहाँ मंजूर था!

उस दिन वह जब पास की तलाई पर खेल रही थी, उसने अचानक हजारों बन्दूकों की धाँय धाँय और कई चीखें कई घण्टों तक सुनी थीं। वह भाग कर पेड़ के तने के पीछे छिप गई थी। रात को जब सन्नाटा हो गया तो वह अँधेरे में दुबकती घर पहुँची थी, लेकिन घर खुला था। दरवाजे पर उसका छोटा भाई अमिताभ लहू-लुहान मरा पड़ा था। उसकी छाती में बड़ा भारी घाव था। पास ही उसकी माँ की चूड़ियाँ टूटी पड़ी थीं। घर का सामान बिखरा पड़ा था। वह माँ! माँ! जोर से पुकार कर रो पड़ी। रोती रही, सुबकती रही। कभी पास ही उसके मरे पड़े भाई की तरफ देखती, उसको छूती। जब वह ठण्डा लगता तो फिर उसे छोड़कर रो पड़ती। रोते रोते वह कब सो गयी, पता नहीं; उसकी हालत पूछने कोई नहीं आया।

सवेरा हुआ तो उसने देखा था बन्दूक ताने सिपाही ही सिपाही। चारों ओर मुर्दा लाशों के ढेर। यह क्या हो गया? ये कैसे मर गये? माँ कहाँ गई? अमिताभ को किसने मारा। डर के मारे सारा दिन भूखी प्यासी उसी मकान में पड़ी रही। दो तीन दिन बाद उसने बड़े सवेरे लोगों को अपने सिरों पर बिस्तर बाँधे पोटलियाँ

लादे तेजी से भागते देखा। वह भी उनके साथ चलती रही। उसकी माँ उसे कहीं नहीं दीखी। वह इस झुण्ड से उस झुण्ड में पहुँच जाती। कभी कोई उसे रोटी दे देता था, पानी दे देता, उसे खा-पी कर किसी के पैरों या पेड़ के नीचे पड़ी रहती। और फिर वही यात्रा।

रास्ते में उसने जान लिया कि पाकिस्तानी सेना ने यह सब किया है। वे कई औरतों के साथ उसकी माँ को भी ले गये हैं। वे सब अब भारत जा रहे हैं, जहाँ कोई डर नहीं। उसने सुना था—लड़ाई हो रही है। और एक दिन सबको कहते हुए सुना कि सोनार बांगला आज़ाद हो गया। अब सब वापस वहीं चलेंगे और वापस जाना जरूरी भी था। वह भी फिर स्त्रियों के झुण्ड में घुस पड़ी। ढाका और ढाका से फीनी पहुँचा दी गई। वही सड़क, वही मुहल्ला। बहुत से घर खण्डर हो गये थे। उसके भाई की लाश अब वहाँ नहीं थी। केवल कुछ बिखरी हुई हड्डियाँ पड़ी थीं। चलते-चलते थक कर वह दरवाजे पर बैठी थी। उसे अभी के नाश्ते के लिए कल ही दो रोटियाँ दे दी गई थी। एक तो सवेरे ही खा ली थी। एक थी सो उसे खा रही थी उसी पत्थर की चौकी पर रखकर, जिस पर माँ उसे खाना परोस कर प्यार से खिलाती थी। वह प्रत्येक झुण्ड पर आँख लगाये इस आशा से देख रही है कि इनमें से उसकी माँ कब आकर उसे दौड़कर गोदी में ले ले। वह बैठी देख रही है—प्रत्येक वापस लौटते स्त्री पुरुषों को। उसमें से प्रत्येक चेहरे पर उसकी माँ का चित्र उभरता है और मिट जाता है।

दिन महीने में और महीने वर्ष में बदल गये। अब वह डाक्टर बनर्जी के घर बर्तन मलती है, झाड़ू लगाती है। दोनों समय बचा-कुचा खाकर वहीं पुराने बरामदे में पड़ रहती है। उसे सपना आता है कि उसकी माँ "अदला बदली" के किसी झुण्ड में से आकर उसे पुकार रही है—"अमिया! ओ अम्मी!" वह उठ बैठती है। और दौड़ कर सड़क के इस छोर से उस छोर तक देखती है। फिर ठंडी साँस लेकर अपनी आँखें पोंछ लेती है.........।

□□□

10

अन्तर्द्वन्द्व

□

उदयकिशन व्यास

रूपाली ने क्षितिज की ओर देखा। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सारे पेड़ इस तरह खामोश थे मानो वे रूपाली के दुख को न बाँट सकने के कारण शर्मिन्दा हों। सध्या की काली पड़ती लालिमा आकाश में फैल रही थी। धीरे-धीरे वह लालिमा समाप्त हो गई और सर्वत्र अँधेरा छा गया। रूपाली एक लम्बे समय से चिराग नहीं जलाती। इस गाँव मे रहते हुए उसे करीब पन्द्रह बरस बीत गये हैं। यहीं उसने अपने जीवन के प्रभात और सध्या देखे हैं! एक समय वह भी सपनों की दुनियाँ मे रहती थी, उसके हृदय में स्नेह निर्झर बहता था, उसकी आत्मा को अपनी निष्काम और निश्चल कर्तव्य भावना से बल मिलता था। लेकिन अब उसके जीवन में एक अमिट अन्धकार है, जिसे वह चिराग जलाकर नहीं मिटा सकती। रूपाली ने भारी मन से अपने टूटे-फूटे घर का द्वार बन्द कर उसे ताला लगा दिया। उसने अपनी फटी ओढ़नी के एक छोर से घर की चाबी बाँध ली तथा दूसरे छोर से आँखों मे अनायास ही छलक आये आँसू पोंछ लिये! उसने एक बार सजल नेत्रो से अपने घर को निहारा, फिर एक निर्जन राह अपना ली।

मन्दिर का पुजारी द्वार बन्द करने वाला ही था कि रूपाली ने प्रवेश किया। "बहुत ही देर से आई हो रूपाली! तुम्हारा ख्याल न होता तो कभी का द्वार बन्द कर दिया होता।" यह कहकर पुजारी एक तरफ हट गया। रूपाली आँखें बन्द करके काली माँ के सामने नतमस्तक हो गई। उसने मन ही मन काली माँ से विनती की और अपना हाथ पुजारी की ओर बढ़ा दिया। पुजारी ने उसके हाथ पर प्रसाद रख दिया। प्रसाद लेने के बाद उसने पुजारी और काली माँ को अंतिम बार प्रणाम किया और मन्दिर के मुख्य द्वार की ओर बढ़ गई। मन्दिर से वह सीधी आनन्द बाबू के घर गई। आनन्द बाबू

इस गाँव के पोस्ट मास्टर थे । यहाँ आये उन्हें कोई चार माह बीते होंगे। वे अपने सरल स्वभाव, परदुखकातरता, मिलनसारिता और मधुर-भाषण के कारण गाँव के अभिन्न अंग बन गये थे । रुपाली के व्यक्तित्व से वे बेहद प्रभावित थे । अतः उनसे मिलने वे कभी कभी उसके घर चले जाया करते थे । रुपाली को भी आनन्द बाबू पर पूरा भरोसा था । वह भी आनन्द बाबू से मिलने अक्सर उनके घर चली जाया करती थी । आज रुपाली ने देखा कि आनन्द बाबू के घर में अन्धेरा है तो उसे किसी अनुष्ट की चिन्ता हो गई । वह बिना उन्हें आवाज दिये ही घर के भीतर चली गई। चारपाई पर आनन्द बाबू सो रहे थे । उन्होंने रुपाली से कहा—"लालटेन जला दो रुपाली ! आज मेरी तबियत ठीक नहीं है, शायद बुखार है । रुपाली ने लालटेन जला दी और आनन्द बाबू के लिए दूध गरम करने लगी । जब दूध गरम हो गया तो आनन्द बाबू ने दूध और दवा ले लिये । रुपाली चुपचाप आनन्द बाबू की चारपाई से सटकर बैठ गई । बहुत चाहने पर भी न तो वह आनन्द बाबू का हाथ छू सकी और न ही उनका सिर दबा सकी । जब आनन्द बाबू ने कहा "अन्धेरा बढ़ गया है रुपाली, अब तुम घर चली जाओ ।" तो रुपाली चौंक गई ।

आनन्द बाबू के घर से करीब दो फर्लांग की दूरी पर एक चौराहा था जिसकी एक राह पर रुपाली चल रही थी । दूसरी राह काली माँ के मन्दिर की ओर, तीसरी राह उसके घर की ओर तथा चौथी राह रामपुर रेल्वे स्टेशन की ओर जाती थी । चौराहे पर आकर वह रुक गई । कुछ देर सोचने के बाद उसने स्टेशन की राह ले ली । इसी राह से वह पन्द्रह बरस पहले मंगल के साथ यहाँ आई थी । मंगल सेठ दौलतराम के यहाँ मुनीम था । एक दिन रात के अन्धेरे में मंगल ने उसे अपने साथ गाँव से भाग जाने को कहा । वह घबरा गई । उसने मंगल के पाँव पकड़ लिये और बहुत मिन्नत की कि वह सेठजी की बहू का हार लौटा दे । लेकिन मंगल हठी था और उसका इरादा अटल था । उसने कहा—"समझने की कोशिश करो रुपा, मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ वह तुम्हारी और बापू की भलाई के लिए ही तो कर रहा हूँ । इसमें घबराने की बात ही क्या है । इस हार की चोरी तो एक माह पूर्व ही हो चुकी थी । अब तक तो सेठ-सेठानी इसे भूल भी चुके हैं और फिर दरोगाजी भी तो अपने ही आदमी हैं ।" रुपाली की आशाओं के महल की नींव हिल गई । उसे अपना अपना [illegible] दिखाई दिया । इस अनहोनी ने उसे मंगल से हमेशा के लिए जुदा कर दिया । मंगल के अंतिम शब्द आज भी रुपाली के कानों में गूँज उठते हैं । "तुम भूल कर रही हो रुपा ! धर्म, ईमानदारी और दया से जीवन का वैभव और सुख प्राप्त नहीं होता ।" जो स्वर्णिम मौके का फायदा नहीं उठाता उसका भाग्य कभी साथ नहीं देता ।" मंगल आत्मावेश में कहता गया "मैं जा रहा हूँ और हाँ, जिस दिन तुम इसके

अपने [illegible]

थोथे ज्ञान और शुष्क आदर्शों से ऊब जाओ उस दिन शहर चली आना। मैं जीवन के अन्तिम क्षण तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। स्वाभिमानिनी रूपाली को जीवन के आदर्शों के लिए अपने दाम्पत्य सुख की आहुति देने में जरा भी संकोच न हुआ। मंगल के चले जाने के बाद कई दिनों तक उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। एक तो वह आत्महत्या करने को उतारू हो गई लेकिन मंगल के पाप ने उसे रोक लिया। उसने निश्चय कर लिया कि मंगल की पत्नी होने के नाते उसे अपने पति के पाप का प्रायश्चित करना है अन्यथा उसे भी नर्क भोगना पड़ेगा। शायद इसी उद्देश्य से वह गाँव की हर स्त्री का दुख दर्द दूर करने की कोशिश करती है। गाँव में किसी के घर शादी-ब्याह होता है तो वह बिना बुलाये ही चली जाती है और अपना काम ढूँढ निकालती है। किसी के घर गमी होती है तो उसका मन रोने लगता है। लेकिन जी कड़ा करके वह शोक संतप्त परिवार के दुःख को हल्का कर देती है। जब से सेठ दौलतराम भगवान को प्यारे हुए तब से वह सेठानी की सेवा में लग गई। दूसरों की सेवा करने में उसे जिस आत्म-सन्तोष की अनुभूति होती है उसी के सहारे वह अपने जीवन के शेष दिन पूरे कर रही है। एक बार तो उसने दीना की लाज रख ली। दीना की बेटी के ससुराल वालों ने दहेज की रस्म पूरी करने के लिए सौ रुपये नकद माँगे। बेचारी दीना के पास कुछ भी नहीं था और समधी किसी भी शर्त पर समझौता करने को तैयार नहीं थे। रूपाली को खबर लगते ही उसने अपने जीवन की बची हुई पूँजी को दीना के हाथ में रख दिया और उसके आँसू पोंछ दिये। किसी के यह पूछने पर कि आखिर वह गाँव के लिए इतना क्यों करती है, रूपाली एक लम्बा भाषण झाड़ने लगती। उसकी मुख्य दलील होती कि आदमी जब दूसरों के दुःख में हाथ बँटाता है तो वह अपनी व्यथा से मुक्ति पाता है। इस प्रकार वह दूसरों के दुख दूर करती रही। लेकिन उसे क्या पता था कि उसका दुख से चोली दामन का साथ है। रूपाली का दिल टूक टूक हो गया जब विधाता ने उसके घर के टिमटिमाते चिराग की रोशनी छीन ली। पिछली अष्टमी को बानू सेठ दौलतराम के लड़के के साथ नहाने गया। दोनों में किसी बात पर झगड़ा हो गया। सेठ के लड़के ने तालाब की मेड़ पर खड़े बानू को धक्का दे दिया। बानू पानी में गिर गया। उसकी श्वास फूलने लगी और शीघ्र ही उसका दम टूट गया। बानू की मृत्यु से रूपाली का जीवन एकाकी हो गया, शारीरिक शक्ति क्षीण पड़ गई और जोश मन्द पड़ गया। रूपाली को ऐसा लगा कि बानू की मृत्यु से मंगल के पाप का प्रायश्चित पूरा हो गया है। उसने तय कर लिया कि अब वह मंगल के पास चली जायेगी।

शायद यही सोच कर वह रेल्वे स्टेशन की ओर आ रही थी कि अचानक चलते-चलते वह रुक गई। उसे ज्वर से पीड़ित आनन्द बाबू का ख्याल आ गया।

जिनका इस संसार में कोई भी नहीं है। बीमारी में उनकी देखभाल कौन करेगा? लेकिन उससे क्या? मंगल भी तो इस संसार में अकेला रह गया है जो जीवन के अन्तिम क्षण तक उसकी प्रतीक्षा करता रहेगा। रूपाली को आनन्द बाबू की जगह मंगल, ज्वर से पीड़ित कहराता हुआ दिखाई दिया। तभी उसे बानू की चीख सुनाई दी और वह सहम गई। रूपाली का विक्षिप्त मन कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिये। इतने में सीटी देकर छुक ''' छुक करती रेलगाड़ी उसके पास होकर निकल गई। रूपाली यह सोच कर वापस गाँव की ओर चल दी कि वह रेलगाड़ी उसे लेने नहीं आई थी।

□□□

11

धूप-छाँव

□

कुन्दनसिंह 'सजल'

आज भी उसे मनचाहे, ठिठुरती भोर में, जल्दी उठ जाना पड़ा। वह उठा, स्टोव जलाया और पानी गर्म करने लगा। बाहर उसने झाँककर देखा, चारों ओर कोहरा छाया हुआ था। रेडियो का स्विच ऑन करते ही प्रातःकालीन भक्ति संगीत कमरे के वायुमण्डल में तैरने लगा। उसने अपने ही पलंग पर लेटे अपने पुत्र राजीव को देखा और एक नजर दूसरी चारपाई पर सोई अपनी पत्नी रीता पर उसने डाली। रीता पहलू बदलकर फिर सो गई थी। करवट बदलने से उसने जान लिया कि रीता जाग रही है और जागकर सो रही है। 'कैसी बेहया औरत है' उसने मन ही मन रीता को कोसा। स्टोव पर रखा पानी उबल-उबल कर बाहर आने लग गया था। उसने स्टोव मंद किया और गर्म पानी की पतीली नीचे उतारी। पास पड़ी पानी की बाल्टी से उसने आधा लोटा पानी भरा और उसमें कुछ गर्म पानी मिलाकर हाथ मुँह धोते कमरे से बाहर निकल आया।

पिछले पन्द्रह दिनों से उसकी यही दिनचर्या हो गई है। वह सुबह जल्दी उठता है और अपने लिए चाय स्वयं ही बनाता है। अपनी पत्नी से बोलचाल बन्द कर देने के कारण उसे यह सारी तोहमत उठानी पड़ रही है। कुछ दिन पहले रीता से उसकी कहा-सुनी हो गई थी। कहा-सुनी तो अक्सर दोनों में होती रहती थी किन्तु उस रोज रंजन की कल्पना से अधिक रीता उससे उलझ गई थी। मात्र स्कूल से लौटकर चाय बनाने की बात ही इतना तूल पकड़ गई थी कि नौबत बोलचाल बन्द कर देने तक की आ गई थी।

हुआ यों कि रीता भी अपनी हैड मिस्ट्रेस से झगड़ कर उस दिन साँझ को घर लौटी थी और रंजन भी अपने बॉस की फटकार सुनकर। संयोग की बात

थी कि उस दिन दोनों अलग-अलग दिशाओं से चलकर एक साथ घर के दरवाजे की देहरी तक पहुँचे थे। दरवाजा रीता ने ही खोला जैसा कि रोज होता था क्योंकि रंजन दफ्तर से रोज देर से घर लौटता तथा सुबह जल्दी चला जाता, इसलिए घर की चाबियाँ रीता के पास ही रहती थीं। अन्दर आकर दोनों ने कपड़े बदले और रंजन पलंग पर लेट गया और रीता पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। राजीव भी अपने पापा के पास पलंग पर चढ़कर बैठ गया। कुछ देर खामोशी के बाद चुप्पी रंजन ने ही तोड़ी—क्या आज चाय नहीं बनेगी ?

"दूध वाला तो देर से आएगा, आप जाकर बाजार से दूध ले आइये, अभी बना देती हूँ चाय !" रीता ने उत्तर दिया।

"आज तो हम सारा काम आपके कर-कमलों से सम्पन्न हुआ देखना चाहते हैं, श्रीमती जी !" रंजन ने खुशामद भरे स्वर में कहा।

"माफ करो मुझे तो। रोज तो मेरी बनाई चाय में कुछ ना कुछ कमी निकालते रहते हो। पीनी है तो बाजार से दूध लाकर चाय बना लो और पी लो।" कहकर वह जाने को हुई तो रंजन ने कहा "आप तो ऐसा फैसला सुनाकर जा रही हैं कि जैसे इसकी अपील अब कहीं नहीं हो सकती। हमसे ऐसी क्या नाराजी है मेहरबान ?" रंजन ने उसे छेड़कर फुसलाने की कोशिश की।

"यदि मैं फैसला सुनाने वाली न्यायाधीश होती तो तुम जैसे क्लर्क के पल्ले क्यों बँधती।" तुनक कर रीता ने कहा। सुनकर रंजन का स्वाभिमान भी चोट खा गया वह बोला "माँ-बाप के ऐसी ही लाडली थीं तो किया क्यों नहीं किसी महाराजा से गठ-बन्धन ?"

"मेरे माँ-बाप तक जाने की खबरदार जो जुर्रत की। अपनी औकात समझ कर बात करो।" रीता ने जरा तैश में आकर कहा।

"तुमको इतना बोलने काबिल बनाया किसने है जरा गौर करो। विवाह से पहले तुम्हारे लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। तुमको पढ़ाया, लिखाया, नौकरी दिलवाई और आज तुम मुझ पर अकड़ रही हो। मरे मैं तो मैं था जो जिन्दा मक्खी निगल गया वरना तुम जैसी निरक्षर को कौन पल्ले बाँधता ?" रंजन का पारा भी अब चढ़ गया था।

"श्रीमान जी, मैं आपकी खरीदी हुई लौंडी या बाँदी नहीं हूँ कि आपका हुक्म बजाऊँ। बराबर की कमाने वाली हूँ। किसी के टुकड़ों पर नहीं पलती हूँ। अपने सहारे ही जिंदा रहने वाली हूँ।" रीता ने अकड़कर कहा। इस प्रकार काफी गर्मा-गर्मी के बाद दोनों ने अपनी अलग-अलग चाय बनाई और उस दिन के नाटक आज तक घर में अलग-अलग चाय बनाने की प्रातः सायं पुनरावृत्ति हो रही है।

अपने आस-पास

दूध वाले की आवाज़ सुनकर रंजन का ध्यान भंग हुआ। उसने देखा स्टोव अब भी मंद मंद मिट्टी का तेल उगल रहा है। वह नीचे जाकर दूध ले आया और चाय का पानी स्टोव पर रखकर स्टोव तेज करने लगा। इतने में राजीव आँख मलते हुए उठा। उसने उठते ही कहा 'पापा' और रंजन ने उसे गोद में उठा लिया। गर्म पानी से उसका मुँह धोकर रंजन ने राजीव को गर्म कपड़े पहनाये और पलंग पर फिर बिठा दिया। राजीव बोला "पापा, मम्मी अबी छो लई है।" "सोने दे बेटा, चाय बन रही है, अपन अभी चाय पियेंगे।" रंजन बोला। चाय का पानी भाप बनने लगा था। रंजन ने चाय की पत्तियाँ पानी में डाली। पतीली से उठ रही भाप में आज से दस दिन पूर्व की एक गर्म घटना रंजन के मस्तक में उभरने लगी।

रीता गुसलखाने गई हुई थी और राजीव को ठोकर लगकर शीशे का गिलास चूर-चूर हो गया था। गिलास का सारा दूध फर्श पर बर्फ के समान बिखर गया था। रीता ने अभी चाय भी नहीं बनाई थी। वह उस दिन कुछ देर से उठी थी और शीघ्रता से सारे काम निबटा देना चाहती थी। शीघ्रता में वह दूध के गिलास को ऊपर रखना भूल गई थी। वह जैसे ही गुसलखाने से निवृत्त होकर बाहर आई तो उसने टूटा हुआ गिलास और बिखरा हुआ दूध देखा और आपे से बाहर हो गई "किसकी मौत आई है यहाँ! कौन मुझे तबाह करने पर उतारू हो रहा है?" "रीता गुस्से में आग-बबूला थी। रंजन के पास से आकर राजीव ने कहा "मम्मी मेले पैल छे दूध का गिलाछ टूत गया औल दूध बिखल गया।" सुनते ही रीता ने आव देखा न ताव, दो तमाचे राजीव के गाल पर तड़ातड़ जड़ दिये। तमाचे उतने जोर से जड़े गये कि राजीव को कुछ देर तक तो साँस न आई और वह अपने पापा के पास जाकर दहाड़ मार कर रोने लगा। रीता की अंगुलियाँ राजीव के कोमल गाल पर उभर आई थीं। देखकर रंजन से न रहा गया। वह कमरे से बाहर निकला और क्रोध से लाल-पीला होकर बोला, "क्यों री डायन, इस बच्चे को मार डालना चाहती थी क्या?"

"तुमने ही तो इसे सिर पर चढ़ाया है। एक तो नुकसान कर दिया और उस पर भी तुर्रा यह कि धमकाओ भी मत।" रीता बोली।

"यह धमकाना हुआ?" राजीव भी तब तक रोता हुआ बाहर आ गया था। उसका गाल दिखाते हुए रंजन बोला "देख! इसके गाल पर कैसी नील पड़ गई है। तुम्हारे माँ-बाप ने भी बचपन में तुम्हें यों ही पीटा होगा।"

"मुझे माफ करो बाबा, मैं तुमसे मुँह नहीं लगती। तुम अपना काम करो, मुझे अपना काम करने दो।" रीता ने उसे फटकारते हुए कहा।

"तुम तो अध्यापिका होकर भी निरी मूर्ख रहीं। अरे, बाल मनोविज्ञान पढ़ो तब जान सकोगी कि बालकों को कैसे ट्रीट किया जाता है।" रजन बोला "तुम्हारा रूखा व्यवहार देख कर तो वह तुमसे अलगाव महसूस करता है। कभी इस पर भी तुमने ध्यान दिया है ?"

"वह तो तुम्हारी तरह ही एकाकी रहने वाला है। उसे घर में कोई अच्छा थोड़े ही लगता है। तुम्हारा स्वभाव ही तो उस पर हावी है।" कहते हुए रीता ने घड़ी देखी और वह अन्दर चली गई। रजन ने भी घड़ी की ओर देखा और वह भी अपने काम में लग गया।

"पापा, पानी खौलने लगा है।" राजीव की बात सुनकर रंजन का ध्यान टूटा और उसने पतीली में दूध डाल दिया। चाय छानकर उसने एक कप में खुद के लिए तथा एक में राजीव के लिए केतली से चाय उडेली और राजीव के पास बैठकर वह चाय सिप करने लगा। चाय के गर्म वफारों में उसे पाँच दिन पूर्व की एक गर्म घटना स्मरण हो आई जिसके फलस्वरूप वह रीता से तलाक तक लेने की सोच बैठा था और तलाक ले भी लेता अगर राजीव बीच में न आ जाता। वह उस दिन से राजीव को चौबीसों घन्टे अपने पास रखता है।

हुआ यह था कि उस दिन रंजन का मित्र रमेश उससे मिलने जयपुर आ गया था। अपने मित्र के आने पर रजन ने एक दिन की छुट्टी ले ली थी और दिन भर रमेश को जयपुर घुमाया। उस दिन दोनों जून उसने खाना भी रमेश के साथ होटल में ही खाया। अपनी पत्नी से मन-मुटाव की बात उसने रमेश से साफ-साफ कह दी थी। रमेश ने रीता से बातचीत अवश्य की थी किन्तु दोनों की दूरियों के सन्दर्भ में एक शब्द भी वह उनका रुख देखकर कह सकने की हिम्मत न कर सका। रमेश जब दूसरे दिन विदा हुआ, झगड़ा उसी समय से आरम्भ हो गया। रीता बोली "आ जाते हैं ऐरे गैरे नत्थू खैरे, यहाँ मुफ्त की रोटियाँ तोड़ने! इस घर को ऐसे ही लोगों ने तबाह कर रखा है। मित्रों के साथ होटलों में दावतें उड़ती हैं घर का कोई ख्याल ही नहीं।"

"मेरे मित्रों के बारे में तुम्हें कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, समझी! मैं तुम्हारी कमाई पर दोस्तों को दावत नहीं देता हूँ। अपने बलबूते पर उनसे दोस्ती निभाता हूँ।" रजन बोला।

"इस घर में क्या मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है? मैं तुम्हें दुराग्रहों को कभी भी घर में पसन्द नहीं करती। उस दिन मेरी बहिन आ गई थी और दो दिन ठहर गई थी तब तो आप मुझे इकोनामिक्स की सेपरेशन समझाने लगे थे, । अब कहाँ गये वे आपके सिद्धान्त?" रीता ने उसे चिढ़ाने की कोशिश की।

"जब मैं तुमसे बात नहीं करता तब तुम क्यों मुझसे उलझती हो, समझ मे नहीं आता ?" रंजन बोला।

"अपनी खीझ मिटाने का इससे अच्छा और क्या तर्क हो सकता है। अपने घर में आग लगी देखकर कौन मूर्ख होगा जो उसे बुझाने के बजाय उससे हाथ सेकेगा ?" रीता बोली।

"रीता, आज तुम साफ सुन लो ! इस घर में तुम्हारा दूसरा स्थान है और मेरे मित्रों का पहला।" रंजन बोला।

"यदि यही बात है तो सेहरा बाँधकर मुझे लिवाने क्यों तशरीफ ले गये थे। अपने दोस्तों से ही घर बसा लिया होता""।" रीता बोली।

"अब भी तो एक रास्ता है—तलाक। चाहो तो आजमा लो।" रंजन बोला।

"शौक से, आजमाइये। मैं ऐसी धमकियों से डरने वाली नहीं हूँ। यदि आपको साथ रहना है तो ढंग से रहिये, वरना यह अदालत रही और तलाक का सीधा मार्ग रहा।" रीता ने फैसला सुनाते हुए कहा।

रंजन का पुरुषत्व चोट खा गया था। उसने कहा "अच्छा तो अब तलाक ही तुम्हारे-मेरे मनमुटाव का फैसला होगा। मैं जाता हूँ, आज ही वकील से मिल कर तलाक का प्रबन्ध करता हूँ।" कह कर रंजन बाहर जाने के लिए कपड़े बदलने लगा। कपड़े बदलकर जैसे ही वह जाने लगा, राजीव उससे लिपट गया और बोला "पापा, तुम कहाँ जा रहे हो ? मुझे भी साथ ले चलो पापा, मुझे मत छोड़ो।" राजीव के आग्रह ने एक उलझन प्रस्तुत न कर दी रंजन के सामने। उसे लगा जैसे तलाक ले लेने पर राजीव अनाथ हो जाएगा और इसका जीवन न जाने क्या मोड़ ले ले। उसने राजीव को उठाकर छाती से चिपका लिया और कमरे से बाहर आ गया। उसे लगा कि रीता का सामीप्य तो जैसे जून की दोपहर की भाँति झुलसाने वाली धूप है और राजीव की निकटता रेगिस्तान में भटकते उसके लिए बादल की छाँव है।

"पापा, मेरी चाय ठंडी हो गई। मुझे भी पिलाओ।" सुनकर रंजन ने अपना प्याला रख दिया और वह राजीव को चाय पिलाने लगा। रीता अब भी पहलू बदले सो रही थी।

□□□

12

अखा

□

सोहनलाल प्रजापति

सर्दी के दिन थे। आकाश में चलते-फिरते बादल तीतर के पंखों का रूप प्राप्त कर रहे थे। ठण्डी हवा चल रही थी। सब प्राणी सूर्य भगवान के निकलने के इन्तजार में बैठे थे। प्रकृति शान्त थी। सर्दी ने प्राणियों पर ही नहीं, बल्कि प्रकृति पर भी अपना प्रभाव जमाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

थोड़ी देर में सूर्य भगवान की लाल किरणें वृक्षों पर पड़ने लगीं। पक्षियों ने अपने मधुर स्वर से उनका स्वागत किया। सूर्य की लाल-लाल किरणें अब ऊँचे बालू के टीलों पर भी पड़ने लगीं।

छोटे से गाँव में इधर-उधर मनुष्यों की आकृतियाँ दिखाई देने लगीं। गायें, भैंसें घरों से बाहर निकल कर जाने लगीं। बच्चे गायों भैंसों के पीछे अपने-अपने शरीर को सिकोड़ते हुए चलने लगे। बड़े-बूढ़े अग्नि जलाकर तापने लगे। आग से उत्पन्न धुंआ ऊपर उठकर उनके छोटे से गाँव पर गोवर्द्धन पर्वत की भाँति छा गया।

हुक्मा चौधरी की चौकी पर, लोग हमेशा की भाँति आग तापने व हुक्का पीने के लिए, एक-एक कर आने लगे। चौकी पर एक अच्छी मण्डली इकट्ठी हो गयी। सब लोग आग के पास बैठकर अपनी ओढ़ी हुई कम्बलों में से हाथ बाहर निकाल कर तापने लगे। हुक्मा चौधरी ने हुक्के के चेश लगाकर आए हुए दूसरे लोगों की तरफ उसे बढ़ा दिया। लोग बारी-बारी हुक्का पीने लगे।

हुक्मा चौधरी को इस गाँव में आए केवल चार ही साल हुए हैं। जिस वक्त वह यहाँ आया था, वह गरीब था। यहाँ आकर उसने खेती की। भगवान ने सुन ली। अच्छा अनाज हुआ। गायें-भैंसें भी ले लीं और अब वह यहाँ ठाट से रहने लगा। हुक्मा चौधरी जैसा बोली का मीठा था, वैसा ही दिल का साफ था। कठिनाई

अपने आस-पास

में वह सबके काम आता था। इस थोड़े से समय में वह गाँव का एक मुख्य व्यक्ति माना जाने लगा। तहसीलदार, थानेदार आदि राज्य कर्मचारियों का स्वागत हुक्मा चौधरी के घर पर ही हुआ करता था। उनके स्वागत में वह दिल खोलकर खर्च किया करता था। इसमें उसका नाम और प्रसिद्ध हो गया। मामलों मुकदमों में हुक्मा चौधरी गाँव वालों की पूरी मदद किया करता था।

हुक्मा शान्त स्वभाव का मिलनसार व्यक्ति था। इसीलिए गाँव वाले सुबह-शाम उसके घर इकट्ठे हो जाते और अपने मतलब और बेमतलब की बातें करते। सारे गाँव में केवल हुक्मा के घर ही पानी तम्बाकू का पूरा इन्तजाम मिलता था।

आज भी प्रात काल हुक्मा की चौकी पर बहुत से व्यक्ति हुक्का पी रहे थे तथा आग ताप रहे थे।

हुक्मा का छह वर्ष का पुत्र उसकी आज्ञा पाकर हाथ में मजबूत लाठी लेकर मदवे ऊँट को पास ही खेत में चराने ले जाता। लड़के का नाम था—अक्खा, यानि अक्षय। जिसका कभी नाश न हो। हुक्मा ने अपने लड़के का नाम अक्खा क्यों रखा, इसकी कहानी एक विचित्र कहानी है।

अक्खा एक छोटी-सी कम्बल ओढ़े, मस्त ऊँट की 'मूरी" पकड़े, आगे-आगे चलता था और ऊँट सफेद झागों से भरा हुआ गुल्ला निकाल कर गूंजता हुआ मद-होश शराबी की तरह पैरों को इधर-उधर रखता हुआ उसके पीछे चल रहा था। पास ही खड़ी ऊँटनी को देखकर ऊँट अपनी गर्दन को अंग्रेजी अक्षर 'S' की तरह गोल करके दुनी मस्ती से गूंजने लगा। पिछले पैर चौड़े करके पूँछ को जोर-जोर से हिलाने लगा। ऊँट का मुँह दूध के समान सफेद झागों से भर गया। झाग टपक कर अक्खा के सिर पर पड़े। परन्तु अक्खा पर पास ही आग तपने वाले लोगों पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

अक्खा ने "मूरी" को झटका दिया और ऊँट उसकी आज्ञा मानकर, ऊँटनी की तरफ देखकर, दांत पीसता हुआ 'घरं-घरं" करता हुआ बच्चे के पीछे-पीछे लड़खड़ाता चलने लगा। अक्खा प्रति दिन ऊँट को इसी समय इसी प्रकार खेत में ले जाया करता था।

अक्खा ने खेत में जाकर ऊँट को खोल दिया। स्वयं ऊँचे टीले पर, धूप में एक छोटी सी झाड़ी के पास, अपनी कम्बल को सिर से पैरों तक ओढ़कर तथा अपनी लाठी को, जो करीब तीन फीट लम्बी थी, कन्धे से लगाकर अपने आगे खड़ी करके बैठ गया।

ऊँट ने पास की झाड़ी पर एक-दो मुँह मारा और फिर गूँजने लगा।

अक्खा निश्चिन्त बैठा था। ऊँट ने अक्खा की तरफ देखा और पूँछ जोर-जोर से हिलाने लगा। ऊँट मस्त होकर लड़खड़ाता हुआ अक्खा की तरफ बढ़ा परन्तु अक्खा कम्बल ओढ़े सर्दी से ठिठुरा हुआ सिर नीचा किए लाठी के सहारे बैठा था। उसको यह पता नहीं चला कि ऊँट पीछे क्या कर रहा है। एकाएक ऊँट अक्खा के ऊपर आ गया। ऊँट अपनी आदत के अनुसार अक्खा के ऊपर बैठने लगा। ऊँट ने अपने अगले घुटने उसको नीचे लेने के लिए जमीन पर रख दिए और बैठने लगा। अक्खा घुटनों से थोड़ा बच गया और ऊँट के पेट के नीचे आ गया। यह सारा दृश्य हुक्मा की चौकी से साफ दीख रहा था। ऊँट को अक्खा के ऊपर बैठना देखकर सब चिल्ला उठे "दौड़ो, दौड़ो, बचाओ, बचाओ! अन्याय हो गया।" सब उठ खड़े हुए परन्तु हुक्मा ज्यों का त्यों आग तापता रहा। उसने बैठे-बैठे यह सब देखा परन्तु फिर भी उसके मुँह पर एक भी भय की रेखा अंकित नहीं हुई।

अगले पैरों के घुटने जमीन पर रखकर ऊँट ज्योंही अक्खा पर बैठने लगा त्योंही अक्खा के पास की लाठी जो खड़ी थी, ऊँट के पेट में चुभ गई। लाठी चुभने से ऊँट एकाएक उठ गया; बैठ नहीं सका। इतने में अक्खा सारी परिस्थिति समझ गया। अपनी कम्बल वहीं छोड़कर भाग खड़ा हुआ। ऊँट फिर कम्बल पर बैठ गया और उसे पैरों से रौंदने लगा।

हुक्मा के पास जो लोग खड़े थे एक क्षण के लिए मूर्तिवत् खड़े रहे। उनका खून जमकर बर्फ हो गया। हृदय गति बन्द-सी हो गयी। सबके कन्धों से कम्बलें खिसक कर नीचे गिर पड़ीं। उनकी आँखें खुली की खुली रह गईं। परन्तु दूसरे ही क्षण अक्खा को अपनी तरफ दौड़ता हुआ आता देखकर आँखें टिमटिमाने लगे। सब अक्खा को देखने लगे। सब ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। परन्तु हुक्मा उस प्रकार बैठा रहा मानो कुछ हुआ ही नहीं।

हुक्मा के घनिष्ट मित्र अमीन से नहीं रहा गया। उसने हुक्मा से आखिर पूछ ही लिया, "यार! तेरे जैसा इन्सान मैंने मुल्क में नहीं देखा। लड़के को मौत के मुँह में देखकर भी तेरा दिल पत्थर का बना रहा और एक शब्द भी नहीं निकला"।

हुक्मा ने हुक्के को दूसरे की तरफ सरकाते हुए कहा—भाई अमीन! जिसको भगवान बचाना चाहता है उसको कोई नहीं मार सकता। जिसकी जितनी उम्र होती है वह पूरी होकर रहती है। इस बेचारे ऊँट की ताकत ही क्या है। स्वयं यमराज भी इसे नहीं मार सकता था। हमारे पण्डितजी ने अपने पोथी-पत्रा देखकर बताया था इसके बड़-भाग्य अच्छे हैं और आयु भी लम्बी है। इतना मुझे विश्वास

अपने प्राण प्या

है कि इसको यदि जलती अग्नि में भी डाल दूं तो भी इसका बाल भी बाँका नहीं होगा। विधाता स्वयं ही इसकी रक्षा कर रहा है। अमीन भाई ! मैं इसकी क्या फिक्र करूँ और मेरे फिक्र करने से होगा ही क्या ? यह मृत्यु के मुँह से एक बार नहीं बल्कि अनेक बार निकला है। मरने की चेष्टा करने पर भी यह बचकर इतना बड़ा हो गया तो मैं इसे बचा कैसे सकता हूँ।"

उपस्थित सब व्यक्ति हुक्मा की बात सुनते रहे। अन्तिम वाक्य सुनते ही जिज्ञासा भरी दृष्टि से हुक्मा की तरफ देखने लगे। अमीन से न रहा गया। उसने पूछ ही लिया, "यह कैसे हुक्मा भाई ?"

"यह किस्सा बहुत लम्बा चौड़ा है। तुम जब पूछ ही बैठे हो तो मैं तुम्हें सुनाता हूँ" हुक्मा ने कहा।

हुक्मा ने कहना शुरू किया "अबका जिसको माँ कहता है वह इसकी माँ नहीं है। वह इसकी मौसी है। माँ इसकी दूसरी ही थी।"

"क्या यह इसकी माँ नहीं है ? हम तो इसे ही उसकी माँ समझ रहे थे ?" सब की आवाज थी।

"तुम सब सुनते जाओ। अभी क्या आश्चर्य करते हो, आश्चर्य तो आगे सुनने पर होगा। मेरे पहले विवाह के दो वर्ष पश्चात मेरे ससुराल में मेरे ससुर के छोटे भाई की पुत्री का विवाह होना निश्चित हुआ। मुझे उस विवाह में बुलाया। उस समय मेरी स्त्री गर्भवती थी और मेरे पास ही थी। मेरा ससुराल मेरे गाँव से तीस कि.मी. दूर था। ऊँट का रास्ता था। जब वहाँ से विवाह का निमन्त्रण आया तो मेरी स्त्री ने कहा कि विवाह में मैं भी चलूँगी। मैंने उसको इस हालत में ले जाना अच्छा नहीं समझा क्योंकि तीस कि.मी. ऊँट का रास्ता था और वह थी गर्भवती। रास्ते में यदि कुछ हो जाय तो लेने के देने पड़ जाएँ। उस समय तो मान गई।

मैं ऊँट पर जीन कसकर जब जाने के लिए तैयार हुआ उस समय वह रो कर साथ जाने के लिए हठ करने लगी। आँखें आँसुओं से भर कर बोली, "दो वर्ष पश्चात् पिता के घर विवाह हो रहा है। मेरी बहिन व भौजाइयाँ सब होंगी, सबसे मिलूँगी। फिर न मालूम कब मिलना हो। और मेरी माँ ने तो मेरे लिए लिखा ही है। उसकी इस प्रकार कातर वाणी सुनकर मैं भी सोचने लगा इसे भी साथ ले लें, चलती चलेगी। मेरी भी समझ उस समय न जाने कहाँ चली गई। मैंने उसे साथ ले लिया। प्रातःकाल शीघ्र ही हम ससुराल की तरफ चल पड़े। दुर्भाग्य यह कि तीस किलोमीटर के रास्ते में एक भी गाँव नहीं। सुनसान जंगल।

दस बारह कि. मी. हम आराम से पहुँच गये। गर्मियों के दिन थे। पूर

तेज होने लगी। हम धीरे धीरे-धीरे चल रहे थे। चलते-चलते मुझे कुछ शक हुआ क्योंकि पहले तो वह अपने आप ही बोल रही थी और फिर दो तीन बार बतलाने पर भी हूँ, हाँ, ही करके रह जाती। मैंने पीछे मुड़कर उसके मुँह की तरफ देखा। मुँह पीला पड़ गया था। होंठ सूख गये थे। मैंने पूछा, "क्या बात है ?' "नहीं कुछ नही।" यह कह कर बात टालनी चाही। परन्तु वह टाल कितनी देर सकती थी। उसके सिर पर मौत जो सवार थी।

थोड़ी दूर चलने पर वह कष्ट से कराहने लगी। उसके पेट में दर्द बड़ा ही गया। लाचार होकर मुझे ऊंट रोकना पड़ा। उस सुनसान जंगल में न चाहते हुए भी मैंने एक वृक्ष के नीचे डेरा डाला। मेरी पत्नी पेट पकड़ कर बैठ गई। मैं अपराधी की भांति सिर झुकाए एक तरफ बैठा रहा। भला मैं कर ही क्या सकता था। दूसरी औरत होती तो सम्भव है उसकी सहायता करती। औरत ही औरत का भेद जानती है। मैं तो उसका छटपटाना देखकर और कराहना सुनकर सुन्न होता जा रहा था। मैंने अपने किए पर पश्चाताप किया। मुझे अपने आप पर गुस्सा आया और उस पर भी।

सचमुच गर्भवती औरत के लिए ऊंट की सवारी खतरनाक है। और हुआ वही जो होना था। विधि का विधान ही ऐसा था।

उसकी कराह तेज होने लगी। शरीर नीला पड गया। उसने एक बार मेरी तरफ देखा और मुँह फेर लिया। मानो उसकी सफेद आँखें अपने किए पर पश्चाताप कर रही थी, या दीपक की अन्तिम लौ की भांति मुझे अन्तिम ज्ञान का सन्देश देकर सदा के लिए बन्द होने जा रहीं थीं।

उसकी कराह धीमी पड़ गई। मैंने बहुत आवाज लगाई परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। कष्ट से ऐसी बेहोश हुई कि फिर होश हुआ ही नहीं। मैं स्तब्ध रह गया। कान बहरे हो गए। चारों ओर का वातावरण शान्त था। एकाएक बच्चे के रोने की आवाज ने उस शान्ति को भंग किया। मेरे कानों के पर्दे खुले। शोक-मग्न आँसुओं से प्लावित आँखों ने रोने वाले नवागत बच्चे को देखने की चेष्टा की। बच्चे को देखकर मैंने उसकी तरफ देखा। उसका शरीर ठण्डा हो चुका। वह सदा के लिए गहरी नींद में सो चुकी थी। मैं कभी नवजात बच्चे की तरफ और कभी उसकी तरफ देखता रहा। ऐसा करते-करते दो घड़ी बीत गई। इसी बीच बच्चे की रोने की आवाज और तेज होती गई परन्तु उसकी माँ·····इतना कहते ही बुड्ढा की आँखों से दो आँसू नीचे टपक पड़े। जिसको उसने अपने अंगोछे से पोंछा। फिर आगे कहने लगा— अब मेरे दिल में अनेक प्रश्न उठने लगे। मुझे

क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए? बच्चे को साथ ले चलूँ? वापिस अपने गाँव बच्चे व लाश को ले चलूँ? इनको यहीं छोड़कर ससुराल चलना चाहिए? आदि अनेक प्रश्न एक के बाद एक उत्पन्न होकर विलीन होते गये। आखिर मैंने सोचा, जो होना था सो हो ही गया। अब चाहे कुछ भी करो। यह तो मर ही गई और बच्चा भी एक दो घड़ी में रोता-चिल्लाता मर जाएगा।

यह सोचकर मैंने लाश को उठाकर, एक घास की ढेर की खाई में डाल दी और बच्चे को उसकी छाती पर लिटा कर ऊपर कटीली कटी हुई झाड़ियाँ (बाड़) डाल दीं। इतना कार्य करने के पश्चात् मेरा दिल भर गया। एक एक चीख निकल गई और मैं फूट फूटकर रोने लगा। परन्तु उस वीरान जंगल में किसी ने नहीं सुना।

ऊँट पर सवार तो हो गया परन्तु यह निश्चय नहीं कर सका कि किधर चलना चाहिए। ऊँट उठकर ससुराल की तरफ चल पड़ा और मैंने भी मेरे एकमात्र साथी ऊँट का ही मन रखा।

मैं, संध्या को ससुराल पहुँचा। विवाह का घर था। चहल पहल पूरी थी। सब प्रसन्न थे। मेरे आने पर उनकी खुशियाँ और बढ़ गईं। मैंने उस प्रसन्नता के वातावरण में अपनी दुःखद घटना कहनी अच्छी नहीं समझी। मैं भी अपने शोक को हृदय में छिपाकर उनकी खुशियों में हिस्सा बँटाने लगा। मेरी छोटी साली ने साथ में एक बार अवश्य पूछा 'उनको साथ नहीं लाए?'" परन्तु मैंने बातों ही बातों में टाल दिया।

विवाह अच्छी तरह हो गया। बारात विदा हो गई। सब मेहमान भी एक-एक करके चले गए। मैं था उनका दामाद। वे मुझे कुछ दिन और रखना चाहते थे। मैंने चलने के लिए हठ किया। उन्होंने मेरी बात मान ली। और मुझे विदा करने की तैयारी करने लगे। मेरी सास ने मुझे १०१ रुपए और पोशाक दी। इसके पश्चात उन्होंने यह कहते हुए "आज मेरी बेटी को तो नहीं लाए परन्तु इसके लिए ये कपड़े तो लेते जाना और उसे दे देना।" उन कपड़ों को देखकर मैंने इतना ही कहा—इसकी अब जरूरत नहीं है। और मेरी आँखें पानी से भर आईं। मेरी सास यह सब देखकर हक्का-बक्का रह गई। उनके आग्रह करने पर मैंने सारा किस्सा कह सुनाया। सुनकर सारे एक बार शोक सागर में डूब गए। मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। सबने मेरी तारीफ की—"दामाद बड़ा समझदार है कि उसने इतने दुःख को विवाह के बाद किसी पर भी प्रकट नहीं किया। वे विवाह के समय किसी को भी दुःखित नहीं करना चाहते थे।

"क्या वह स्थान अभी तक आया नहीं ?"

"आ गया।"

"मेरी बहिन की मृत्यु कहाँ हुई थी ?"

"इस वृक्ष के नीचे।"

"फिर आपने क्या किया ?"

"कुछ नही।" यह कहकर ऊँट को तेज करने के लिए एड़ लगाई परन्तु गुल्ली ने ऊँट की मूरी पकड़ ली, और बोली—

"नहीं मुझे बताओ फिर आपने क्या किया ?"

"आगे चलें फिर बताऊँगा।"

"नहीं पहले बताओ उसको कहाँ डाला ?"

"पूछकर क्या करोगी ?"

"मैं अपनी बहिन को देखूँगी।"

"अब क्या देखना है ?"

"तो भी"।

"मरने के बाद मैंने उसे इस घास के ढेर के पास डाल दी। और उसके ऊपर कंटीली झाडियाँ डाल दी हैं"।

"मैं देखूँगी।"

"तुम, डर जाओगी"

"नहीं, मैं इतनी कच्ची नहीं हूँ।"

गुल्ली ने ऊँट को रोक लिया, और उसे देखने के लिए हठ करने लगी; मैंने भी सोचा, इस समय दो व्यक्ति हैं। लाश को जमीन में अच्छी तरह गाड दें ताकि कुत्ते, गिद्ध आदि उसकी दुर्दशा न करें।

हम ऊँट से उतर कर घास के ढेर के पास गए। कटीली सूखी झाड़ियों के समूह को लाश पर से दूर किया। वहाँ के दृश्य को देखकर मैं दंग रह गया। बच्चा जीवित था। वह अपनी मृत माँ के स्तन को मुँह में लिए चूस रहा था। अपनी मृत माँ की छाती पर हाथ पैर पटक रहा था। पाँच दिनों तक बच्चा किस शक्ति से जिन्दा रहा, ईश्वर ही जाने। एक बात जरूर थी। उसका सारा शरीर विकृत हो गया था। परन्तु एक स्तन वैसा का वैसा पड़ा था।

बच्चे को देखते ही गुल्ली ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। इसी ने उसका पालन-पोषण किया। यह वही अक्खा है जो आज ऊँट के नीचे से बचकर निकल गया है। तभी से मैंने इसका नाम अक्खा यानि अक्षय रखा है।

□□□

13
सौदा

□

वासुदेव चतुर्वेदी

"अरे ओ हरामजादे········ ··· भड़ुए··· ··· ······· क्या उस छिनाल को
ही रहेगा या बाहर भी निकलेगा। क्या देखते हो चट कर जायगा या बोलेगा
ओ मार काटिये अब तो बाहर निकल, बड़ा आया है पैसे वाला, लाट साहब
अपने घर का, निकलता है कि············? दरवाजे पर बैठी बूढ़ी चाची ह
भद्दी भद्दी गालियाँ दे रही थीं पर न तो वह सुन रहा था और न ही बाहर नि
का नाम ले रहा था। हमीदन चाची बाहर से उड़ाई हुई लड़कियाँ बेचने का ध
थी। 'माल' का खरीददार चुपके से आता। माल पसन्द करता, फिर भाव
तय होता। उसके बाद सौदा पक्का हो जाता जबकि उस 'माल' की एक
नगद अदायगी हो जाती।

आज अतरफ 'नई मुर्गी' फँसा कर लाया था। वह उसे हमीदन चाची
सुपुर्द कर चला गया था। उसका काम तो 'मुर्गियाँ' फँसाना था बाकी सौदा
चाची ही करती थी। यह मुर्गी कौन थी? वह थी बेचारी सुशीला! उसका भ
उसके विपरीत था तो उसका रूप उसके लिए अभिशाप था।

बेचारी सुशीला का भाग्य ही विपरीत था। नहीं तो उसे इतनी मुसी
क्यों उठानी पड़ती? शादी के पहले उसके माँ-बाप ने अच्छा लड़का देख शादी
किया था। हरएक माँ-बाप अपनी-अपनी लड़की को आँखों में बंद कर उ
प्रकार लड़के वालों को सौंप देता है जिस प्रकार एक मौन चिड़िया को पिंजड़े में ब
कर किसी शरीफ आदमी को सौंप दिया जाता है। यदि वह शरीफ आदमी कस
निकल जाय तो इसमें उनका क्या दोष? यह तो कसाई की इच्छा पर निर्भर
कि वह उसे पाले या उसे मारे। यही हाल लड़की का होता है। मरने बाद के

से विदा होने पर लड़की यदि सुख से रहती है तो पलती है और यदि ससुराल वाले नीच हुए तो उसकी हालत उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार छुरी के नीचे बकरी की गर्दन होती है।

सुशीला शादी के बाद अपनी सास के साथ कुम्भ स्नान को गई थी। पर्दे के कारण वह गुण्डों के हाथों पड़ गई। किसी प्रकार अपने धर्म की रक्षा करती हुई बच कर आई, इतने में सास ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह गंगा स्नान को उतरी और उसे मगर खींच ले गया। लोक-मर्यादाओं का ध्यान रख कर उस रूढ़िग्रस्त परिवार ने उसको मृत घोषित कर सभी धार्मिक क्रियाएँ पूरी कर दीं। भला हो उन शरीफ आदमियों का जिन्होंने दम-खम लगाकर उसको उसके ससुराल तक तो पहुँचा दिया। असलियत प्रकट हो—उसके पहले परिवार की बूढ़ी औरतों ने उसे कुल्टा, पथभ्रष्ट, धर्म-भ्रष्ट और न जाने क्या-क्या कह कर घर में घुसने देने से इन्कार कर दिया। लेकिन उसके पति ने अपनी मर्दानगी दिखा कर घर वालों के विरोध के बावजूद भी उसे स्वीकार कर लिया था।

अब सुशीला को जो भी देखता वह सन्देह की दृष्टि से देखता था। पुराने ख्याल के सास, ससुर और ताई तो बात बात में ताने दे देकर उसका जीना दूभर किए हुए थे। सत्येन्द्र यद्यपि अपनी पत्नी को अत्यधिक चाहता था तथापि वह माँ-बाप के सामने उनकी बातों का प्रतिरोध नहीं कर पाता था। ऐसा करने में उसके रूढ़िगत संस्कार ही उसे भीरु बनाये हुए थे। सुशीला उस दमघोटू वातावरण में घुटन महसूस करती हुई भी खुश थी। इसलिए कि कम से कम उसका मर्द तो उसका है, बाकी से उसे क्या लेना-देना। जिस प्रकार बत्तीस दाँतों के बीच जीभ की जो हालत होती है, इस घर में वही हाल सुशीला का था।

कई बार सुशीला सत्येन्द्र से कह चुकी थी कि—"क्या ही अच्छा हो हम यह घर छोड़ दें। चले चलें वहाँ, जहाँ रूढ़िगतसंस्कारों की मुर्दा लाश हमें नरक की यातना भुगतने हेतु बाध्य न करे। माँ और बाबूजी नहीं चाहते कि हम इस घर में रहें, तो हम अलग हो जाएँ। आपको भी मेरी वजह से रोज के ताने नहीं सुनने पड़ेंगे। सत्येन्द्र को मन ही मन उसकी बात अच्छी लगती लेकिन उसमें इतना नैतिक साहस नहीं था कि वह अपने माँ-बाप के सामने अपने मन की बात प्रकट कर सके। उसका दिल भी घर भर के ताने सुन सुन कर छलनी हो गया था। वह बाबूजी की सहृदयता और माँजी के विकराल रूप से परिचित था इसलिए माँ कभी जली-कटी सुनाती तो वह जहर का कड़वा घूँट पी कर रह जाता था।

रोज-रोज की खिच-खिच सुनते-सुनते वह तंग आ गया था। माँजी और बाबूजी की तरफ से तो सुशीला मर चुकी थी। वे तो यों समझ रहे थे कि सुशीला

ने गुण्डों से आत्म-रक्षा कर इस घर में क्या गवाह थी, मगर उनकी बात ही कहना थी। वाह रे, भाभी ! किस सफाई से आकर उन्होंने कहा था कि गंगा स्नान करते समय सुशीला को मगर खींच ले गया। क्या त्रिया चरित्र दिखाया था उन्होंने भी कि दरवाजे में कदम रखते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी थीं और हाय—उसकी मत पूछो! घर में एक ही रत्न है, गंगा स्नान करके सीढ़ी तो लांघी थी उतरते ही दहाड़ मार कर रो उठी थी जैसे सुशीला न मरी, उनकी कोख से पैदा हुई कोई लड़की मरी हो। वाह रे घर भर का समर्थन, कि एक झूठ बोलकर आत्मविश्वास को भी झुठला दिया। बाबूजी ने भी झट से दूसरी शादी का प्रस्ताव स्वीकार करने में देरी न की, क्या पता पढ़े-लिखे नौजवान बेटे को दूसरी बहू मिले या न मिले।

पर जब सुशीला सही-सलामत लौट आई तो क्या-क्या दलीलें देकर उन्होंने उसके आने का विरोध किया था। क्या-क्या बातें कह कर उन्होंने अपनी झूठी शान में चार-चांद लगाने की कोशिश की थी। अपने द्वारा गढ़े झूठ को स्वीकार करने के बजाय उन्होंने लोक-मर्यादाओं की दुहाई देकर उसकी पवित्रता पर कीचड़ उछाला था। सारी बातें एक एक कर उसकी आँखों के सामने दृश्य की भांति नाच उठीं। उसका सिर भन्ना गया। वह परेशान हो उठा। क्या विपदा के लेख उसके लिए ही लिखे गये थे ! क्या ईश्वर इस प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा कर उसकी परीक्षा लेना चाहता है !

जिस सत्येन्द्र ने सुशीला को गुण्डों से छूट कर आने पर परिवार वालों के विरोध के बावजूद—अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर, जिस साहस का परिचय दिया था अब उसी सत्येन्द्र का वह साहस उसे धोखा दे चुका था, वही सत्येन्द्र अब परिस्थितियों के जाल में कैद हो चुका था। अपने परिवार वालों के सामने पंगु हो गया था। समाज के ठेकेदार उसके इस साहस की आलोचना करने पर तुले हुए थे।

सुशीला महसूस कर रही थी कि उसके कारण सत्येन्द्र लोगों से आँख से आँख मिलाकर बात नहीं करता है। घर वालों के ताने सुन-सुन कर वह बुझा-बुझा सा रहने लगा है। न हँस कर बोलता है, न खिलखिला कर विनोद ही करता है। वह इस घर में क्या लौट आई, मानो कोई क़यामत ही आ गई हो। कभी-कभी वह महसूस करती—घर वालों की तरफ से तो वह मर गई थी, इसलिए यहाँ आकर उसने भूल ही की। इन्हीं परेशानियों के कारण ही तो सत्येन्द्र बात-बात में उसे झिड़क देता है। पहले तो वह ऐसा नहीं था। फिर एकाएक उसमें यह परिवर्तन क्यों आ गया ? कहीं वह भी मुझे सन्देह की दृष्टि से तो नहीं देखता ? उसे अफसोस था तो यही कि वह पुण्य कमाने तो गई थी और पुण्य तो न मिला पर कुल-घातिनी, कलंकिनी,

अपने आस-पास

पथभ्रष्टा का अनचाहा खिताब उसे अवश्य मिल गया। भाग्य ने उसके साथ कैसा कुटिल खेल खेला था।

अब इन्हीं परिस्थितियों के साथ एक झटका और लगा। सत्येन्द्र बात ही बात में सुशीला से उलझ पड़ा।

"मैं कहता हूँ यदि तुम अपने आपको ठीक नहीं करती हो तो यह घर छोड़ कर चली जाओ! यहाँ से कहीं भी, जहाँ तुम्हारे जी में आवे। तुम्हें रहना है तो इसी हालत में रहो। मैं मजबूर हूँ आगे कुछ भी करने में, समझीं, तुम्हीं सोच लो तुम्हें क्या निर्णय करना है अन्यथा......" कहते कहते सत्येन्द्र चुप हो गया।

"अन्यथा क्या? यही न कि घुट-घुट कर मरूँ? कहाँ चली जाऊँ और क्यों चली जाऊँ? इस घर में मैं चल कर आई हूँ और मर कर जाऊँगी। मैंने भी तय कर लिया है, जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं रहूँगी।" सुशीला ने जवाब दिया।

"यह असम्भव है, तुम मेरे साथ नहीं रहोगी। तुमने इस घर को कलंकित किया है, तुम पतिता हो, कुल्टा हो! कौन इस बात को मानने को तैयार होगा कि जो औरत चार दिन तक लालमण्डी के कोठे पर रह कर आई वह दूध की धोई होगी? तुम्हें इस हालत में स्वीकार करने के बाद मैं बुरी तरह झिंझोड़ दिया गया हूँ, मैं टूट गया हूँ; इतने दिनों तक ताने सुन-सुन कर! अब कुछ न कुछ निर्णय करना पड़ेगा।" सत्येन्द्र ने पसीना पोंछते हुए कहा।

"कैसा निर्णय करना पड़ेगा? आप मर्द हैं और जिस प्रकार का निर्णय आपने पहले करके अपने साहस का परिचय दिया था, उसी प्रकार का साहस एक बार और कर लो। मैं कहती हूँ छोड़ दो इस घर को—अपने पाँवों पर खड़े होकर अलग से गृहस्थी बसाओ। जिस घर में जीना दुर्लभ हो, अन्न जहर बन जाय, बात बात में दाँता-कटी हो—उस घर में रहने से क्या लाभ?" सुशीला ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया।

"मैं कह चुका हूँ। मैं यह घर हर्गिज नहीं छोड़ूँगा, तुम्हारी वजह से मैं और अधिक जलील नहीं होना चाहता। तुम जाना चाहो, तो खुशी से अपने माँ-बाप के पास चली जाओ! जहाँ थोड़े दिन रहकर तुम्हें भी सन्तोष होगा। स्थिति सामान्य होने पर तुम्हें वापस ले आऊँगा।" सत्येन्द्र ने पासा फेंका।

"इसका मतलब तो यह है कि आप भी मेरी वजह से परेशानी महसूस कर रहे हैं और मुझे दूध में पड़ी मक्खी की तरह फेंक देना चाहते हैं? आखिर मैं आपकी विवाहिता पत्नी हूँ, आप ही जब मेरा बोझ नहीं सँभाल सकते हो अपने माँ-बाप के लिए क्यों बोझ बनूँ? जो पति कल तक मेरी तारीफों के पुल बाँधा करता

था, आज वही मुझे घर से निकल जाने के लिए आमादा हो गया। इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है?" सुशीला ने कहा।

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम्हारी वजह से मैं अपने माँ-बाप से मन-मुटाव करूँ। अब आगे का निर्णय करना तुम्हारे हाथ है।" सत्येन्द्र ने कहा।

"आप मेरी वजह से अपने माँ-बाप से मन-मुटाव नहीं करना चाहते और मैं आपकी वजह से अपने माँ-बाप पर बोझ नहीं बनना चाहती। अब आप ही बताइये आपको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?" सुशीला रुँआसी होकर बोली।

"जाओ—जहन्नुम में! मुझे इससे क्या? यह कहते हुए सत्येन्द्र कमरे से बाहर निकल गया। सुशीला सिर थाम कर बैठ गई।

× × ×

और एक दिन सुना कि सुशीला घर छोड़कर चली गई। घर वालों ने दिखाने के लिए अफसोस जाहिर किया। गाँव वाले तरह तरह की बातें करने लगे। कोई कहता 'भाग गई', कोई कहता 'भगा दी गई'; कोई कहता 'निकाल दी गई' और कोई कहता 'बेचारी को घर छोड़ने को मजबूर किया गया' अर्थात जितने मुँह उतनी बातें हो रही थीं। असलियत कोई नहीं जानता था कि बात क्या है?

इन प्रतिक्रियाओं के साथ ही घर वालों ने तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। माँ जी बोलीं—

"देखा सगु, उस कलमुँही ने एक बार और हमारी नाक कटवाने में कोई कोर कसर न रखी। उसे जाना ही था तो फिर आई क्यों थी? डायन मेरे पूत को बेटे को खा गई, सत्यानाश जाए ऐसी राँड का, कीड़े पड़ें उसके तन बदन में। हे भगवान, क्या ऐसी औरत मेरे बेटे के भाग में ही लिखी थी। मैं तो जीते-जी उसका मुँह नहीं देखूँ। भगवान रक्षा करे ऐसी राँड का पग फेरा मेरे घर में न पड़ने दे।"

माँजी ने बोलना बन्द किया ही था कि ताई बोल उठी, "राम राम कैसा कलयुग आ गया है, ये आजकल की छोकरियाँ तो दिन में ही तारे दिखाती हैं। मैं तो कहती हूँ यह [illegible] तो उन गुण्डों के बहकावे में आकर हमारा घर ही साफ करके चली गई। [illegible] बेटा [illegible] अपनों की [illegible] भी नाक तो कट गई।"

अब चाची और ताई ने अपना वक्तव्य समाप्त कर दिया तो बापूजी ने "अरी वह बेचारी अपने साथ कुछ भी नहीं ले गई। भगवान जाने किन परिस्थितियों में उसने घर छोड़ा? सत्तू की माँ, तेरी आदत ही कुछ ऐसी है! तेरे तो कुछ नहीं

[illegible]

कहा ? क्यों बेटा सत्तू तू ही बता क्या बात हुई थी ? कहाँ गई वह ? लाला शिव शरण को क्या जवाब दूँगा ? क्या कहूँगा उनसे ? हे भगवान ! मेरे बुढ़ापे में धूल पड़ गई। अब क्या होगा ?"

"बस हो गया बाबूजी ! वह गई तो अपनी बला से, अब अपना उससे क्या लेना देना। अब तो उसका नाम लेकर भी जबान गन्दी करना है बाबूजी।" सत्येन्द्र ने कहा।

"पर गाँव वाले जो नुक्ता-चीनी कर रहे हैं, हमारे खानदान पर कीचड़ उछाल रहे हैं। उनका मुँह कैसे बन्द करें ? मैं तो कहता हूँ सुशीला भाग नहीं सकती, हो न हो किसी ने उसे भगाया है।" बाबूजी ने कहा।

"हाँ हाँ, हमने भगाया है उस छिनाल को. बड़ी भोली बन कर, अपने तिरिया चरित्तर दिखा कर दो-दो बार हमें छुला गई। कहीं का नहीं छोड़ा उस कलमुँही ने ! चलो छुट्टी हुई—न रहा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। पहले ही क्यों न मर गई थी गंगा में डूब के। पैदा होते ही क्यों न उसे बिल्ली उठा के ले गई। सच कहती हूँ सत्तू के बाबूजी, अगर वह मेरी कोख से जनम लेती तो मैं उसका गला घोट देती, पर क्या करूँ ? भगवान जाने वह किस जनम का बदला ले रही है।" माँ जी ने ताव खाकर कहा।

बाबूजी माँ जी की बात सुनकर सुशीला के बारे में सोच रहे थे, चश्मे को उतार कर उन्होंने अपने आँसू पोंछे फिर बोले, "थाने में रिपोर्ट तो कर आऊँ नहीं तो ये पुलिस वाले आयेदिन परेशान करेंगे।"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं थाने जाने की, कोई आयेगा तो कह देंगे पीहर गई है मरी चोड़े ही है। जाओ और बैठक में, बैठो मैं दूध लेकर आती हूँ। माँ जी ने कहा। बाबूजी बैठक की ओर चले गये।

सत्येन्द्र वहीं खड़ा रहा। वह घर भर के इस माहौल को देख रहा था। इनकी सब प्रतिक्रियाओं को सुन रहा था। वह मन ही मन समझ रहा था कि जिसे अपनाने पर उसे नफरत की छुआ-छूत ने घेर लिया था, उससे अब छुटकारा मिल गया है। वह जायेगी तो कहाँ ? सिवाय अपने माँ बाप के और कहाँ ठिकाना है। आखिर सुशीला को भगाने में किसी का तो हाथ था। 'चलो पीछा छूटा'—यह बड़-बड़ाता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

सुशीला के कदम बढ़े जा रहे थे एक अनजानी दिशा की ओर। वह कहाँ जा रही है और क्यों जा रही है, इसका उसे ज्ञान न था। उसने घर इसलिए छोड़ा था कि वह परिवार वालों के ताने सुन-सुन कर तंग आ गई थी; साथ ही उसका अपना पति भी उसके लिए पराया हो गया था। उसके उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण

वह घुट-घुट कर जीने से बहतर मरना समझती थी। औरत जब मजबूर हो जाती है तो दो ही हथियार उसके पास रह जाते हैं—रोना और मर जाना। एक हथियार का प्रयोग तो वह कर चुकी थी, अब दूसरा हथियार ही शेष रहा था। उसने आत्म-हत्या के विचार से घर छोड़ कर पहाड़ी का रास्ता पकड़ा। लेकिन "होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है। मुकद्दर कहाँ से कहाँ ले जाता है, इसका किसी को ज्ञान नहीं होता है। वह पहाड़ी की चढ़ाई पूरी करने जा ही रही थी कि मगरूर की निगाह उस पर पड़ गई। मगरूर लड़कियाँ उड़ाने और बेचने वाले अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह का सदस्य था। यह गिरोह भले घर की शरीफ और खूबसूरत लड़कियों को फुसला कर सब्जबाग दिखा कर अपने अड्डे पर ले आता, वहाँ ऊँची बोली पर उन्हें बेच दिया जाता था। उसी गिरोह ने हजारों लड़कियों को अरब देशों को निर्यात किया था। भेड़-बकरी की तरह उनका सौदा कर उन्हें नरक में धकेला था। मगरूर ने देखा कि रास्ते चलते मुर्गी हाथ लगी है, इसलिए उसने हमदर्दी का काँटा फेंक कर उसे फँसा लिया। सुशीला कुएँ से निकली और खाई में गिर पड़ी।

किसी प्रकार सुशीला को वह फुसला कर हमीदन चाची के कोठे पर ले आया। दाल मंडी के कोठे पर तो औरत की अस्मत का सौदा होता है; पर यहाँ हमीदन चाची के कोठे पर तो औरत के इन्सानी जिस्म को चंद चाँदी के टुकड़ों पर बेचा जा रहा था। यह देख कर सुशीला को ग्लानि हुई। काश! उसके पास ज़हर की पुड़िया होती तो वह नीलामी पर चढ़ने से बच जाती।

हमीदन चाची के अड्डे पर जो भी खरीददार आता, वह सुशीला को पसन्द कर लेता। लेकिन बात नोटों की गड्डी और भाव-ताव पर आ कर अटक जाती। पाँच-सात आदमी सुशीला को देख चुके थे। सभी ने उसे पसन्द किया। सुशीला गुमसुम बैठी अपने भाग्य को कोस रही थी।

सबसे पहले एक सरदार जी ने देख कर कहा था—"बादशाहो, कुड़ी की है पटाखा है, तेनूँ मोल की है कुडी ?" सुशीला ने उनका भी कोई उत्तर नहीं दिया।

इसके बाद खान साहब ने देख कर कहा था—

"वल्लाह, क्या हुस्न का परी लाया है! खुदा कसम, जो मंगेगा—हम देगा पर इसको खरीदेगा, छोड़ेगा नाईं।"

इसके बाद भी कई देखने वाले आये और चले गये पर सौदा किसी ने पूरा नहीं किया।

और अब आया एक अंतिम खरीददार जो शक्ल-सूरत से निहायत शरीफ लगता था। उसने सुशीला को देख कर शान्तिपूर्वक उसकी रामकहानी सुनी। उसने उसकी व्यथा को समझा। सुशीला से सारी बातें सुन लेने के बाद उसने कहा, "बहिन तुम मुझे अपने भाग-भाव

गलत मत समझो। विश्वास रखो मैं किसी गलत इरादे से तुम्हे खरीदने नही आया हूँ। मैं इस बात को जानता हूँ कि औरत एक कमजोरी है, एक मजबूरी है लेकिन मैं उसकी कमजोरियों और मजबूरियों से लाभ उठाने वाला इन्सान नही हूँ। आज ही मालूम हुआ कि किसी भले घर की लड़की को यहाँ फँसा कर लाया गया है और वह बेची जा रही है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुम्हारी जी जान से रक्षा करूँगा। तुम इस बात को मानो या न मानो, लेकिन यह सच है कि इसी अड्डे से मैं चार-पाँच बहिनों को इन लोगों की कीमत चुका देने के बाद उनको सुरक्षित उनके घर पहुँचा चुका हूँ। तुम मुझे अपना भाई समझो। किसी प्रकार का संशय मन मे मत रखो। एक बात और बता दूँ कि मेरे भी बाल-बच्चे हैं, फिर भला मैं लड़कियो को खरीदने क्यों निकलूँगा। बात यह है कि मेरी भी एक बहिन थी, गुण्डों द्वारा उसे भी चुरा लिया गया। इसी प्रायश्चित्त के रूप मे मुझे व्यापार में जो लाभ होता है, उसे मैं बहिनों के उद्धार मे लगा देता हूँ। मैं यही सोच कर यहाँ आया था कि जो लड़की बेची जा रही है वह इन नर-पिशाचो द्वारा फँसाई गई होगी और उसकी किसी मजबूरी का फायदा उठा कर रकम सीधी करना चाहते हैं। वास्तव में मैंने जो सोचा था, वह सही निकला। मुझ पर विश्वास करो बहिन! मैं किसी गलत इरादे से नहीं बल्कि उद्धार करने के इरादे से आया हूँ। मुझे धरमसी भाई कहते हैं। शहर का प्रमुख उद्योगपति और व्यवसायी। आज से तुम भी मुझे अपना भाई ही समझो और मेरे घर को अपना घर समझो। मैं अभी हमीदन चाची से बात करता हूँ जो भी वह माँगेगी, देकर, तुम्हें इस जेल से छुड़वाऊँगा।

"सचमुच आप देवता हैं" सुशीला बोल पड़ी। बाहर चाची बड़बड़ा रही थी—इसलिए धरमसी भाई ने बाहर निकलते ही पूछा, "हाँ चाची क्या कीमत लगाई है इसकी ?"

चाची ने दो गिलौरियाँ मुँह में दबाते हुए कहा, "लाला दस हजार होंगे एक पाई भी कम नहीं होगी। पाँच हजार तो इस पर खर्च कर चुकी हूँ।"

धरमसी भाई ने पूछा "चाची बैंक से काम चल जायगा या नगद भुगतान चाहिए ?"

"न लाला, बैंक-वैंक में हम क्या समझें ? सौदा तो हम नगद लेकर ही करेंगे।" चाची ने कहा।

धरमसी भाई ने नगद भुगतान कर सुशीला को मुक्ति दिला दी।

जब वह बगले पर पहुँची और धरमसी भाई ने उसका परिचय पत्नी और बच्चों से कराया तो वे प्रसन्नता से बाँसों उछलने लगे।

सुशीला ने महसूस किया कि जिस पति के साथ उसने सात फेरों द्वारा शादी की थी उसने उसके साथ धोखा किया था। उसमें इतना नैतिक साहस नहीं था कि वह परिस्थितियों का मुकाबला कर सकता। लेकिन परमसी भाई ने तो निःस्वार्थ केवल गौर करके उसे नीलामी पर चढ़ने से बचाया है। उसे लगा इस दुनिया में सत्येन्द्र जैसे कापुरुष भी हैं जिन्होंने अपनी विवाहिता पत्नी को नरक की ओर धकेल दिया। इसके साथ ही परमसी भाई जैसे इन्सानियत के फरिश्ते भी हैं जिन्होंने धर्म की बहिन बना कर उसके बजाय एक मोटी रकम बिना किसी हिचकिचाहट के अदा कर दी। सच है—इन्सानियत अभी मरी नहीं है और तब तक नहीं मर सकती, जब तक परमसी भाई जैसे इन्सानियत के जीते-जागते पुतले जिन्दा हैं।

□□

से लिपी है, पर इन्होंने कभी मेरी नहीं सुनी। सदा मुझे ही दबाया है। थोड़ी-थोड़ी सी बात के लिए इन्होंने माँ व पिता का मुँह देखा है। जैसे इनका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है।

मोड़ से यहाँ तक आते-आते मैंने कितना कुछ सोचा है—मैं क्यों भटक गई हूँ अतीत में? सड़क के इस टुकड़े को क्यों अपने साथ जोड़ लाई हूँ? मुझे स्कूल में काम करना है। स्कूल आ गया है। मैं साइकिल कोने में रख चुकी हूँ। अब मैं स्कूल में हूँ।

मेरे आगे-आगे सड़क के उस तरफ वो साइकिल लिए हुए चल रही है। मैं जानता हूँ चौराहा आते ही वह मन्दिर वाली सड़क पर मुड़ जायगी, और मैं सीधी सड़क पर चला जाऊँगा। मैं भी नहीं बोलूँगा, और वह भी नहीं बोलेगी। हमें बोलना भी नहीं चाहिए। हमारे बोलने या ना बोलने से वास्ता भी क्या है? क्या बोल लेना या देख लेना भर जिन्दगी है? उसने कभी मेरी किसी भी बात को खुशी से नहीं माना, और माना भी, तो कितने ही क्लेशों के बाद; सारी खुशी को मिटाकर! उसका अहम् ही उसे खा गया।

वह हर बात अपनी ही क्यों करवाना चाहती थी? वह कोई बुराई अपने सिर लेने को तैयार नहीं थी। घूमने जाना है तो मैं पूछूँ माँ से, सिनेमा ले जाना है तो पहल मैं करूँ, घर में यदि देर से आऊँ तो बोले नहीं; और जल्दी आ जाऊँ तो वह मग्न है माँ की सेवा में। जैसे मैं उसका कोई नहीं होता था। जब तक मैं आवाज न दूँ, वह हर्गिज नहीं आयेगी। उसका अपना तरीका था रहने का और मेरा अपना। तभी तो सड़क के दो किनारों पर हम चले जा रहे हैं अपने अलग-अलग रास्ते पर। यही क्रम है और अब यही जिन्दगी है। वह स्कूल जा रही है: मैं दफ्तर जा रहा हूँ। वह मुझे सिर्फ देखती है, और मैं उसे सिर्फ देखता हूँ, फिर दोनों चल देते हैं। दफ्तर आ गया है। मुझे काम करना है। वह स्कूल पहुँच गई होगी। काम में लग जायेगी। मैं भी काम करूँगा। मैं सड़क पीछे छोड़ आया हूँ और अब काम कर रहा हूँ।

घड़ी दस बजा रही है। मैं हड़बड़ा कर उठती हूँ कहीं देर तो नहीं हो रही है? स्कूल जाना है। साइकिल उठाकर चल देती हूँ। सड़क के किनारे चलते-चलते सोचती हूँ फिर इसी रास्ते आ गई हूँ—जैसे हर रोज आया करती हूँ। सामने वही चौराहा है और वही चौराहे के सामने वाली सड़क। नजर सड़क पर उठ ही गई है, वे आ रहे हैं। आज वे पैदल हैं। शायद साइकिल पंचर हो गई होगी। मेरे कदम धीरे-धीरे उठने लगे हैं। मैं बेखबर-सी धीरे-धीरे चल रही हूँ। वे भी तेजी से कदम बढ़ाते इसी तरफ चले आ रहे हैं। रोजाना का क्रम है। हम इसी चौराहे पर हैं। मैं मुड़ जाती हूँ, वे सीधे चले जाते हैं। क्या यही सिलसिला जीवन भर रहेगा? यह चौराहा क्या हमें इसी तरह अलग-अलग टुकड़ों में बाँटता रहेगा।

मैं डरती थी, रोजाना घर में होने वाली छोटी-छोटी बातों का तनाव हमें तड़का न दे, और हुआ भी वही जिससे डरती रही; इसीलिए तो कोशिश की थी कि एक घर अलग ले लूँ, और एक स्वर्ग इन्हें दे दूँ, एक स्वर्ग मैं ले लूँ; पर इन्हें अपना घर छोड़ना मंजूर नहीं था। ये घर वालों के ही थे, मेरे लिए कुछ नहीं। फिर मैं ही अपना घर क्यों छोड़ती?

माँ जी का ख्याल था कि मैं अपनी माँ की मदद करती हूँ। क्या ये नहीं जानते थे कि मेरी माँ गरीब जरूर है, साथ ही इज्जतदार भी? लेकिन इन्होंने कभी मुँह नहीं खोला। माँ के आज्ञाकारी बेटे हैं न, बीवी पर कुछ भी गुजरती रहे, इससे क्या वास्ता था इन्हें? मैं फिर वहीं आ गई हूँ। जो कुछ पीछे छिटका आई थी उसको क्यों बेकार बीन रही हूँ? मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। मैं तय कर चुकी हूँ कि मुझे सड़क के इस किनारे पर चलना है। मैं साइकिल तेज कर देती हूँ। स्कूल आ गया है। सड़क पीछे छोड़ आई हूँ। मैं साइकिल रख रही हूँ। चपरासी घंटा बजा रहा है। मैं स्कूल में हूँ।

आज भी वह सड़क के उसी किनारे पर चल रही है--स्कूल जा रही है। मैं दफ्तर जा रहा हूँ। हम दोनों के काम पर जाने का एक समय है। हम दोनों रोजाना यहीं इसी जगह पर मिलते हैं। शायद वह मुझे देखने भर को इस रास्ते से आती है। वह चाहे तो अपना रास्ता बदल सकती है। कहीं मैं भी उसे देखने को ही तो इस रास्ते से नहीं आता हूँ। मैं भी तो अपना रास्ता बदल सकता हूँ। लेकिन यह सब जैसे बाहरी सा लगता है। पर फिर भी हो रहा है ना। मेरे लिए वह सड़क के दूसरे किनारे पर चलने वाली एक राहगीर है जो मोड़ आते ही अपने रास्ते मुड़ कर चली जायगी। शायद मैं इससे ज्यादा कुछ नहीं हो सकता उसके लिए। मैं अब इस सम्बन्ध में नहीं सोचूँगा। मुझे तो सड़क के इसी किनारे पर चलना है। चलते रहना होगा—जैसे उसे, सड़क के उस किनारे के साथ। मैं तेज कदम उठाकर चलने लगता हूँ। अब दफ्तर आ गया है। मैं अपने कमरे में घुसता हूँ। मेज तक पहुँचता हूँ। डायरी निकाल कर काम देखता हूँ और काम में लग जाता हूँ।

फिर साइकिल उठाकर स्कूल के लिए चल पड़ी हूँ। नपे-तुले कदम रोजाना की सड़क पर पड़ते चले जा रहे हैं। मैं चली जा रही हूँ। चौराहे पर आ गई हूँ। आँखें आपने आप उसी तरफ, सड़क पर कुछ खोजती-सी उठ गई हैं। इधर-उधर देखती हूँ, सड़क पर बहुत से व्यक्ति चल रहे हैं पर वे नहीं दिखाई दे रहे हैं। कदम अपने आप धीरे हो जाते हैं। आँखें फिर कुछ ढूँढती हैं। आज वे नहीं आए, शायद आने वाले हों। दो मिनट रुक जाऊँ? नहीं-नहीं, मैं नहीं रुकूँगी! क्या पता

दूसरे मरहूद के

आगे ही निकल गए हों ? मैं फिर आगे को चल देती हूँ। आगे आकर दो रस्ते हैं। मैं अपने चारों तरफ देखती हूँ वे कहीं दूर तक नहीं दिखाई देते दाहिने हाथ वाली सड़क ही तो मुड़ती है मेरे स्कूल की तरफ, जहाँ से मैं मुड़ती हूँ। मोड़ आ गया है। मैं चल रही हूँ, मुड़ने को मन नहीं कर रहा मैं दायें वाली सड़क पर हो लेती हूँ। शायद वे आगे निकल गए हों। मैं आ जाती हूँ और मोड़ पीछे छूट जाता है।

दो कदम चल कर हाथ साइकिल का ब्रेक दबा देते हैं। इधर से क रही है ? क्या तू उन्हें देखने भर को रोजाना इस रास्ते से आती है ? नहीं, रास्ते मे नहीं आऊँगी—हम दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं। मैं साइकिल लेती हूँ।

मोड़ वाली सड़क से मुड़कर रोजाना की तरह साइकिल पर चढ़ जाती आज वे नहीं मिले। लगा अन्दर कहीं कुछ चटक गया। नहीं मिले तो क्या गया ? मैं बेचैन क्यों हूँ ? कहीं यह चौराहा मेरे अन्दर तो नहीं उतर गया मैं साइकिल तेज कर देती हूँ। स्कूल के कामों की फेहरिश्त दिमाग में दौड़ लगती है। हाथ फिर ब्रेक पर पड़ जाता है। साइकिल फिर धीरे हो जाती कहीं वे बीमार तो नहीं हो गए ? पर किसी काम से छुट्टी भी तो ले सकते हैं। अजीब उदासी से भर रहा है। साइकिल तेज व धीरे करते स्कूल में आ गई हूँ काम शुरू कर दिया है। कक्षा में मन नहीं लग रहा है। लड़कियों को लिखित का दे दिया है। मैं कक्षा में घूम रही हूँ। लेकिन मन बेचैन है जैसे कहीं कुछ खो है ? रह-रहकर खिड़की तक आती हूँ और लौट जाती हूँ। किसी लड़की की का मे लिखे जाते प्रश्न के उत्तर को पढ़ने लगती हूँ। लगता है, आँखें उस स पर जड़ आई हूँ—जो पीछे छूट गई है। सड़क के कोलतार को अपने पैरों चिपका लाई हूँ। मैं फिर जिन्दगी को सोचने लगी। घंटा बजता है, मैं कॉपि ले रही हूँ। मुझे दूसरी कक्षा मे जाना है।

चाहे उनकी साइकिल पंचर हो गई है या वे लेट हो गए या बीमार हो गए, या उन्होंने रास्ता बदल लिया, या कुछ भी किया हो व कुछ भी करें—मुझे क्या मतलब ? मुझे लगा, अन्दर जो जुड़ा हुआ था, कट गया है। मैं हल्की हो गई हूँ।

दस बज रहे हैं। साइकिल उठाकर चल रही हूँ। अभ्यस्त पाँव उसी तरफ चल पड़े हैं। दो कदम चलकर रुक जाती हूँ। ये सड़क रात मेरे कमरे की दीवारों पर चिपक गई थी। ये चौराहे मेरे तकिए पर ठहर गए थे—और मैं फिर इसी रास्ते आ गई। नहीं, मैं इस सड़क व चौराहों को अपने कमरे में नहीं आने दूँगी। मैं अपना रास्ता बदल देती हूँ, और आज ही—अभी ! मैंने अपनी साइकिल वापिस मोड़ ली है। और अब मैं अपने घर के सामने वाले मोड़ से मुड़कर पीछे की सड़क पर जा रही हूँ। मैंने अपने आपको फिर बदल लिया है।

"अब मुझे कुछ नहीं होगा। मैं बिलकुल ठीक हूँ""मगर आज तो""

"क्या आज तो?"

"आपने साड़ी बहुत सुन्दर पहन रखी है, खूब जच रही हो""

"सच! चलो आपको पसंद आ गई" राजेन्द्र के मुँह से अपनी तारीफ सुन कर उसे बहुत अच्छा लगा। फिर उसने सोचा""शायद हमेशा पुराने कपड़े पहनने के बाद एक बार कोई नया कपड़ा पहन लो तो कुछ आकर्षित करता ही है। इसके सामने वह पहली बार ही तो नई साड़ी पहनी है। वैसे भी कभी उसने अपने मेकअप पर अधिक ध्यान नहीं दिया था, मगर जब से राजेन्द्र से मुलाकात हुई है तभी से वह अपने को आकर्षित बनाने का प्रयत्न करने लगी है। उसकी बुझी-बुझी आँखों में आशा की किरण दिखाई देने लगी है। उनमें कुछ सपने तैरने लगे हैं।

"तो आज इस खुशी में कुछ""हो जाए।" राजेन्द्र ने मुस्कुराते हुए कुछ शरारत भरे अन्दाज में पूछा।

"क्या मतलब!" शोभना ने कुछ चौंकते हुए पूछा।

"मेरा मतलब है—इस नई साड़ी की खुशी में कुछ चाय-वाय का इन्तजाम हो जाए।"

"पिला दूँगी, मगर एक शर्त है।"

'वो क्या?

"चाय मेरे घर चलकर पीनी पड़ेगी।"

"पर क्यों? यहीं मँगवा लो या छुट्टी के बाद किसी रेस्टोरेंट में पिला देना।"

""नहीं, मैं होटल या रेस्टोरेंट में कभी नहीं जाती।"

शोभना ने एक-दो बार पहले भी कहा था—"चलो, मैं तुम्हें अपना घर दिखा दूँ, मगर उसने 'फिर कभी' कहकर टाल दिया था। आज शोभना को फील न हो जाये इसलिये उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

राजेन्द्र को शोभना के साथ देखकर आज फिर शोभना के बापूजी के चेहरे पर खिंचाव आ गया था। जब भी वह शोभना के साथ किसी जवान लड़के को देख लेते हैं तो उनके चेहरे पर एक खिंचाव आ जाता है, जवान लड़की के बहक जाने के डर से नहीं, बल्कि एक जाने-पहचाने डर से ऐसा होता है।

न जाने क्या शोभना के साथ कोई जवान लड़का उन्हें सहन नहीं होता? उनके व्यवहार में इतनी रूखाई क्यों आ जाती है? शोभना ने सीधे मुँह बात नहीं की। [illegible] जैसे शोभना ने कोई अपराध कर दिया है। कई बार तो अपने व्यवहार से उनके [illegible] [illegible] कि [illegible] बनाये रखने को उसकी [illegible] [illegible] नहीं [illegible]।

[illegible]

२०-२२ वर्षों तक तो शोभना को उनका व्यवहार इतना नहीं अखरता था। वह समझती थी कि जवान लड़की पर तो माँ-बाप का अंकुश रहता ही है। मगर अब तो जवानी उसका साथ छोड़ती जा रही है। पूरे तीस साल पार कर चुकी, फिर भी उस पर वही अंकुश है। अब उसे बाबूजी की नीयत का पता चल चुका है।

पहले तो वह सोचती थी कि अब मैं जवान हो गई हूँ—बाबूजी मेरी शादी की चिन्ता में हैं। कहीं कोई बदनामी न हो जाए, इसीलिए सीमा में रहना जरूरी है। मगर तीस साल के बाद भी बाबूजी ने अभी तक कोई लड़का नहीं ढूँढा। घर पर शोभना से जो लड़का मिलने आता है वह भी उन्हें सहन नहीं होता। अपनी ढलती हुई जवानी का आभास दिखाने के लिए शोभना ने कई बार अपने बाबूजी के सामने ऐसे ही मूक प्रदर्शन किये हैं। आज भी उसने ऐसा ही किया, राजेन्द्र को अपने घर लाकर।

बड़ी मुश्किल से वह अपने अनुकूल कोई लड़का ढूंढ पाती है, मगर उसका सपना हमेशा अधूरा ही रह जाता है। वैसे भी तीस साल पार कर चुकी लड़की को वर कितना मुश्किल से मिलता है? उसकी आशा की किरण बनकर राजेन्द्र उसके सामने आया है। उसने सोच लिया है कि अब यह मौका वह अपने हाथ से कभी नहीं जाने देगी।

मगर इस बार बाबूजी के चेहरे पर खिंचाव के साथ उनकी आँखों में पीड़ा भी झलक रही थी। जब उनकी आँखों में यह पीड़ा देख लेती है तो शोभना का हर मंसूबा रेत की दीवार की तरह ढह जाता है। इस पीड़ा को शान्त करने के लिए न मालूम उसने कितनी बार अपनी चाहतों का गला घोंटा है। एक यतीम बच्चे के [illegible] की तरह वह उनके लिए हर कुर्बानी देने को तैयार हो जाती है। वह सोचने लगती है कि शायद उसकी जिन्दगी दूसरों के लिए ही बनी है। हमेशा अपने दर्द की परवाह किए बिना, अपने परिवार की चिन्ता में घिरी रहती है।

बाबूजी को नौकरी से रिटायर मिल जाने के बाद घर की सारी जिम्मेदारी का बोझ उसी को ही उठाना पड़ा है। माँ तो बचपन में ही चल बसी थी। पहली पत्नी के मर जाने पर बाबूजी ने दूसरी शादी कर ली थी। नई माँ के आने के बाद सारा माहौल घर अस्त-व्यस्त हो गया था। नई माँ बहुत ही खर्चीली और फैशनेबल थी। शोभना के बाबूजी से तो वह उम्र में काफी छोटी थी। जब तक पैसा था, बाबूजी भी उसी के बहाव में बहते रहे। रोजाना रात को नई पत्नी के साथ क्लब जाना और ताश खेलना उनकी आदत बन गई थी। घर की परिस्थितियों पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। प्रतिदिन नई माँ का कभी कोई मित्र आता कभी कोई, फिर वही नाच-गाना।

कमरे के बीच

इतना कुछ होने पर भी शोभना को हमेशा बन्धनों में रखा गया। शोभना की एक छोटी बहन और भी थी। दोनों का जीवन कष्टमय हो गया।

दूसरी शादी के कुछ दिनों बाद ही पिताजी रिटायर हो गये थे। जो कुछ उन्हें मिला था, वह सब शराब और फिजूलखर्ची में समाप्त हो गया। सब कुछ जब समाप्त हो गया तो नई माँ घर छोड़कर चली गई। बाबूजी को इतना तोड़ गई कि उन्होंने चारपाई पकड़ ली।

अब सारी जिम्मेदारी शोभना पर ही थी। किसी तरह बी.ए. कर लेने के बाद उसे अध्यापिका की नौकरी मिल गई थी। अब बीमार बाबूजी का इलाज, छोटी बहन की शादी, नई माँ की निशानी एक छोटे भाई की पढ़ाई की जिम्मेदारी और घर का बोझ सब कुछ उसी पर था। वह इसी बोझ से दबी जा रही थी।

बहिन की शादी अभी एक वर्ष पहले कर चुकी है। उसकी जिन्दगी तो वीरान हो चुकी थी, इसलिए उसने अपनी छोटी बहिन का विवाह ठीक समय पर ही कर दिया।

छोटी बहिन की शादी की थी तो सबने तारीफ की थी उसकी। बाबूजी ने कहा था—"बेटी, तुमने पुष्पा की माँ का हक अदा किया है...."

पुष्पा ने भी कहा था—"बहिन तू देवी है, आज तू नहीं होती तो न जाने हमारा क्या हाल होता?"

सबने तारीफ तो की मगर उसके अन्दर का दर्द कोई नहीं पहचान सका। जब वह अपनी शादी का संकेत देती तो किसी को अच्छा नहीं लगता। कोई उसकी तारीफ नहीं करता बल्कि बाबूजी के चेहरे पर खिंचाव आ जाता। उसकी जिम्मेदारी दूसरों का अधिकार बन गई है। घर के हर आदमी ने उसे अपनी जीविका का साधन मान लिया है। वह अपने बाबूजी की अपने बच्चे की तरह देखभाल करती रही है जैसे वह सिर्फ इन्हें पालने के लिए ही पैदा हुई है।

सुना है, जवान बेटी बाप के सीने का पत्थर होती है, सिर का बोझ होती है; मगर यह तो सब कुछ इसके विपरीत है। उसने घर वालों की खुशी के लिए अपनी चाहतों का हनन कर दिया था। अपने अस्तित्व को भुला दिया था; मगर इस राजेन्द्र को पाकर उसे फिर से अपने अस्तित्व का ध्यान हो आया था।

राजेन्द्र ने शोभना के सामने शादी का प्रस्ताव भी रख दिया था, उसने सोच लिया था कि अब यह मौका हाथ से नहीं जाने दूँगी। उसने राजेन्द्र से कुछ समय सोचने के लिये माँगा था। मगर राजेन्द्र जल्दी ही शादी करना चाहता था।

ऐसे समय शोभना को अपनी माँ का ख्याल आया, यह सुनकर पती....काश वह जिन्दा होती तो यह सब कुछ वही करती। उसे कुछ कहने का अवसर नहीं थो।

आखिर उसने स्वयं बेशर्म होकर बाबूजी के सामने अपनी शादी की बात चलाई तो उत्तर मिला—"तेरी मर्जी''''तेरा जो जी चाहे कर''''मैं क्या कह सकता हूँ''''मैं तो खुद तेरे टुकड़ों पर पल रहा हूँ, पर''''शादी करने का फैसला ही कर लिया है तो पहले बन्टी को पढ़ाई खत्म कर लेने दे। तूने ही जिद करके आगे पढ़ाने को कहा था''''शोभना यह निराशाजनक उत्तर सुन कर आगे कुछ नहीं बोल सकी।

न जाने कब उसका भाई पढ़ाई खत्म करेगा? वह बाबूजी के मन की बात समझ गई थी। उसे भाई के पढ़ाई खत्म करने और बाबूजी के मरने तक इन्तजार करना होगा।

आखिर राजेन्द्र को तो अपना निर्णय बताने का समय आ ही गया था।

"क्यों''''क्या सोचा तुमने?" आखिर उसने पूछ ही लिया।

"मैं शादी के लिये तैयार हूँ, मगर''''मेरी एक शर्त है।"

"क्या शर्त है तुम्हारी?"

"तुम्हें मेरे घर पर ही घर-दामाद बनकर रहना पड़ेगा क्योंकि मैं अपने वृद्ध और बीमार बाबूजी को अकेला नहीं छोड़ सकती''''।" उसने सोचा कि राजेन्द्र मुझसे प्यार करता है। मेरी मजबूरी समझ कर शायद वह मान जाए, मगर उसकी आशा के अनुकूल उत्तर नहीं मिला।

"नहीं शोभना, मेरी माँ को बहू चाहिए, वो इसके लिए तरस गई है, मुझे उसकी चाहत को पूरा करना है''''"

अब पुष्पा कैसे कह दे कि उसके बाबूजी को भी बेटी चाहिए। सबको उससे कुछ न कुछ चाहिए।

आखिर बात नहीं बनी। राजेन्द्र ने कहीं और शादी कर ली। शोभना का जैसे सब कुछ छिन गया। अब रास्ते की उस चढ़ाई को पार करने में वह असमर्थ हो गई है। अब वह इस चढ़ाई से पहले साइकिल से नीचे उतर जाती है; क्योंकि अब उसे कोई जल्दी नहीं, स्कूल में उसकी राह देखने वाला अब कोई नहीं है, अब तो उसे घर लौटने की जल्दी रहती है। बीमार बाबूजी का खाना-पीना, उनकी देखभाल करना, समय पर दवाई देना—सभी कुछ उसे ही करना है। लगता है वह अपने बाप की बेटी नहीं, माँ है। जब तक वह जिन्दा है, उसे यही करना है''''।

□□

16
हड़ताल

शिवकुमार शर्मा

यह उस देश की बात है जहाँ की सरकार बड़ी शान वाली थी। अफसर प्रधान कार्मिकों के लिए सभी इन्तजाम करती थी। काम करो, न करो, तो भी पूरी तनख्वाह। काम मत करो जब मर्जी हो, तब भी तनख्वाह। बीमार रहो तो सरकार इलाज कराए। प्रत्येक शहीदी या त्यौहार मनाओ तो सरकार एकदम में धन दे। यहाँ तक कि हड़ताल पर रहो, खूब तोड़-फोड़ करो, राजनेताओं को और सरकारी अधिकारियों को खूब डाटो-फटकारो, गालियाँ दो और उनके जीवित होते हुए भी उनके नाम का मातम मनाओ, उनका दाह-संस्कार कर दो, फिर भी पूरी तनख्वाह। क्यों न कहें कि भारतीय संस्कृति में पतिव्रता स्त्रियों की जो बात कही जाती है—वह पत्नियों में अब नजर आए न आए परन्तु यह बात अब सरकार में साक्षात नजर आती है। सरकार 'कर्मचारी-व्रता' है। किसी भी व्यक्ति को, वह लूला-लंगड़ा, काना, या चरित्र का कैसा भी हो, जब एक बार वरण कर चुकी, तो वह उसे जीवन भर निभाती है, सब कुछ उसके लिए करती है। व्यक्ति उसे कोसे और यहाँ तक कि चौराहे पर उसका चीर हरण कर दे, फिर भी सरकार उसी की बनी रहती है, अपने व्रत को कायम रखती है, कर्मचारी-व्रता बनी रहती है। कर्मचारी को ऐसी शान वाली सरकार ही चाहिए। ऐसी सरकार के होते हुए उसके पौबारे हैं, परन्तु, वाह रे कर्मचारी! वाह रे इन्सान! इन्सान की यह मनोवृत्ति होती है कि उसके पास जो कुछ होता है, उससे उसे संतोष नहीं होता। अगर कुछ गर्म उसके पास है, तो ठंडा चाहिए। कुछ ठंडा है, तो उसे गर्म चाहिए। उसके पास जो नहीं है, वही उसे चाहिए। ऐसी मनोवृत्ति [illegible] भी हक है। अब हड़ताल होगी, उसे काम [illegible]। तभी सुनने में आया, तो चाहिए और [illegible] से मनवाने के लिए हड़ताल हड़ताल [illegible] अपने आस-पास

कर दी। हड़ताल शुरु हो गई। सभी ने चैन की साँस ली कि चलो हड़ताल शुरु हुई। हड़ताल क्यों हुई है ? इससे किसी को क्या मतलब ? मतलब माँगों से नहीं है, हड़ताल से है, कार्यालय जाने की 'बोरडम' से बचने से है, शहर की सडको पर जलूस मे घूमने से है, सुन्दर-सुन्दर नारों को रचना करने और उनको बोल-बोल कर मजा लेने से है, अगर किसी को इनमें मजा नहीं आता है, तो उसे अपनी पसंद की जगह घूमने जाने मे है। अगर किसी को अपना मकान बनवाना है या खेत जुतवाना है तो उसके लिए सुलभ अवसर प्राप्त करने से है, और अगर किसी को अपने अधिकारी से चिढ़ है, तो उसे खूब बुरा-भला कहने का सुन्दर अवसर पाने से है। साधारण दिनो मे भी काम न करने वालो ने सोचा—चलो कार्यालय जाना मिटा। काम न करने वालो का बोझा ढोने वालो ने सोचा—चलो इतने दिन ही पीठ को आराम मिलेगा, सो किसने देखा। काम और काम मे आस्था वालों ने सोचा—सारे भाजी एक भाव, फिर मीरजाफर या जयचन्द कहलाने मे क्या लाभ ?

हड़ताल सभी वर्गों मे फैल गई। घर मे झगड़ा हो गया। बेचारी 'कर्मचारी व्रता' सरकार अकेली रह गई। जिनको जीवन भर पालने का उसने व्रत ले रखा था, वे अलग हो गए।

सरकार से लोग पूछते—यह क्यो झगड़ा है ? तो सरकार बोलती—मेरे अपने घर की बात है, थोड़ा-सा मनमुटाव हो गया है। वे आजकल गुस्से मे हैं। घर से बाहर सडक पर चले गए हैं। फिर भी, है तो घर के ही।

मैं कभी भी उनसे बात करने को तैयार बैठी हूँ। घर मे आ जाएँ, बात कर लूँगी। कर्मचारी घर मे नहीं आए। घर की बात थी। सरकार ने कहा—कोई हर्ज नहीं, वे घर मे न आएँ, मैं ही बात करने चली आऊँगी बाहर बात करने को सरकार चली। बात हुई, पर जीवन भर जिनके पालन का उसने व्रत रखा हुआ था वे न माने। बात टूट गई। फिर भी सरकार बोली—घरेलू बात है। घर का दरवाजा खुला है, वे आएँ न आएँ पर बात के लिए दरवाजा खुला है। सरकार घर मे कर्मचारी सड़क पर, दरवाजा खुला हुआ है। दोनों झाँक रहे हैं कि पहल कौन करे। फिर पहल हुई। दूसरी बार फिर सरकार ने बाहर आकर बात की। लेकिन फिर बात टूट गई। अब सरकार बोली—बार-बार बात टूटती है तो अब मैं नहीं बोलूँगी।

घर की बात अब थोड़ी-थोडी बाहर की होने लगी। शायद सरकार समझने लगी कि अब तक तो मैंने प्रत्येक कर्मचारी की रक्षा का व्रत ले रखा था। परन्तु क्या मैं भुलावे मे हूँ ? वह सोचने लगी, जिनको मैंने वरा है, उनका तो जीवन भर पालन का मेरा व्रत भी है, उन्हें तो मेरे ऊपर हुकूमत का अधिकार भी है, परन्तु

जिनसे मँगनी हुई है—उनकी भी त्यौरियाँ बदली हुई हैं। मँगनी तो छूट भी सकती है। जिन्हें वरा उन पर तो मेरा भी पूरा अधिकार है। अगर न माने तो मैं घर में अकेली कब तक रहूँगी। कब तक भारतीय नारी की तरह इस युग में एकाकी जीवन बिताऊँगी। मैं अदालत मे जाऊँगी। तलाक माँगूगी।

इस बार हड़ताल ने भी खूब अपना रंग दिखाया। पहले जगह-जगह के कर्मचारी अपनी जगह जुलूस निकालते, नारे लगाते, सभाएँ करते, पुलिस को गिरफ्तारियाँ देते, जेल जाने वालों से बाहर वाले एक साथ कहते—

'हम विश्वास दिलाते हैं,
आप चलो हम आते हैं'।

गाँव से आदमी लाते हैं। गिरफ्तारियाँ देने का काम लगातार चला जब शहर के कर्मचारियों द्वारा गिरफ्तारियाँ देने में कोताही आने लगी, तो गाँवों से बारी-बारी से कर्मचारी गिरफ्तारी देने आने लगे। क्रम लम्बा चला। जेलें भरने लगीं। तब सरकार चुनिंदा कर्मचारियों को जेल में भेजने लगी और शेष को ट्रकों में भर कर जंगलों मे छोड़ने गली। फिर भी कर्मचारी हड़ताल चलाते रहे। गिरफ्तारी देते रहे। गिरफ्तारी देने के पूर्व रोजाना सभा होती। सभा में सबके साथ-साथ कर्मचारी पुलिस को भी बुरा-भला कहते। कभी उसकी अयोग्यता को बखानते, कभी उसे कमजोर और नपुसक कहते और कभी क्या और कभी क्या कहते। यों पुलिस के भी इन आरोपों और कथनों से कान पकने लगे थे। वह कुछ करने को उत्कट थी। परन्तु·········।

इस हड़ताल के बाहरी पक्ष के साथ-साथ एक भीतरी पक्ष भी था। बाहरी पक्ष भी था। बाहरी पक्ष में विशाल जनसमूह था। परन्तु, इसी जनसमूह में नाना प्रकार के लोग नाना प्रकार की सूझबूझ से इसमें हिस्सा बँटा रहे थे। यह सम्भव भी था, क्योंकि कार्यालय समय सवेरे का था, हड़ताल का समय और हड़ताली कार्यक्रम दिन को चलता था। कुछ लोग प्रातः कार्यालय में आते और कहते—"हम दिल से हम हड़ताल में आना नहीं चाहते, अतः यहाँ हैं।" परन्तु हड़तालियों के साथ दिन में जब वे होते, कहते—"हम तो यहाँ हैं, आपके ही साथ हैं, आपने गलत सुना है। आपको किसने कहा कि हम आफिस जाते हैं?" यों वे कर्मचारी-वर्ग सरकार को भी और हड़ताल जनसमूह को भी, दोनों को प्रसन्न रखते। जिस तरफ आते रहे उसी में उन्होंने अपने लाभ की व्यवस्था की थी। इनमें से जो कोई अपने को ——— [illegible]

तो नहीं।" कुछ इनसे भी आगे थे। उन्होंने कार्यस्थल पर ताला लगाकर, फाटक पर चिट चस्पा कर दिया था, जिस पर लिखा हुआ था—"हाजरी देने वाले सामने वाले तेली की दुकान पर रखे हाजिरी-रजिस्टर मे हस्ताक्षर कर सकते हैं।" किसी ने लिखा था—"पड़ोस वाली पड़ोसिन जी के यहाँ रखे रजिस्टर पर आप हाजिरी करें। कुछ न तो हाजिरी करना पसंद करते और न कार्यालय जाते, परन्तु दिन भर सोचते कि आखिर हमारा क्या होगा। हम तो केवल सहानुभूति दिखाने आए थे, पर हो गया यों कि जैसे ऊँठमने मे जाते थे पर पहले तो सर मुँडाना पड़ा और अब तो तीजा, नवाँ, बारहवाँ और मासिक श्राद्ध भी कर चुके फिर भी नहीं लौटे तो क्या हम वार्षिक श्राद्ध करके घर लौटेंगे। उधर वे जिनके यहाँ ऊँठमने में गये थे, वे नदारत हैं। अगुलियों पर गिनने लायक लोग थे जो "सरकार-व्रती" निकले। उन्होंने स्पष्टता और दृढ़ता से कहा—"हमे इस हड़ताल के कारणों और स्वरूप मे कोई विश्वास नहीं, हम तो काम करेंगे। हड़तालियों ने इन्हें मीरजाफर और जयचद कहा। सभा मे इनके नामों की रोजाना चर्चा होती, परन्तु ये अपने निर्णय से टस से मस न हुए। हड़ताली इन्हे बुरा भला कहते-कहते थक गए। ये हड़तालियों के जयचद थे, परन्तु सरकार मानने लगी कि ये ही मेरे सच्चे प्रेमी हैं। सरकार ने पहली बार इन सच्चे प्रेमी "सरकार-व्रतियों" के दर्शन किए।

क्रम ज्यों ज्यों लंबा होता गया, सरकार के दृढ़ कर्मचारी-व्रत मे ढिलाई आने लगी। सरकार यह सोचने लगी कि क्या घर मुझे ही रखना है? क्या मेरा रिश्ता कर्मचारियों से केवल इकतरफा ही है? अगर ऐसा है तो यह रिश्ता कब तक चलेगा? मैं कब तक कर्मचारियों द्वारा बुरा-भला कहना सुनती रहूँगी? कब तक इस घर मे इनके द्वारा तोड़-फोड़ बर्दाश्त करती रहूँगी? क्या यह घर मेरा ही है, इनका नहीं? मैं अकेली ही कब तक इस घर को सँभालती रहूँगी? जो ये घर का काम न करें, घर के बाहर रहें, रसोई में रोटी न खायें, तो मैं कब तक इनका बाहर का होटल का बिल चुकाती रहूँगी?

सरकार ने शक्ति का रूप धारण किया। बोली—मैंने तय किया है, काम नहीं तो रोटी नहीं, तनख्वाह नहीं। घर मे अमुक तारीख तक आ जाओ तो भी घर का मान लूँगी। जिनसे मेरी मँगनी हुई है, उनसे मैं मँगनी तोड़ती हूँ। घर का काम चलाने को नये रखूँगी, उनको हमेशा के लिए रखूँगी। घर के लोग अमुक तारीख तक घर मे न आएँ, तो उनको फिर कभी घर मे नहीं घुसने दूँगी। सरकार पुलिस की ओर भी थोड़ी सी वक्र दृष्टि से झाँकी।

फिर क्या था, जिस पुलिस को हड़ताली बुजदिल कहते थे, उसमे मर्दानगी आई। पहले घर वाला समझ कर लाठियाँ नीची कर रखी थीं, उसकी लाठियाँ ऊँची हुईं। कान तो बुरा-भला सुनते-सुनते उनके पक ही चुके थे। बाहर से एक

र्नों की संख्या कितनी हो गई। दूसरों का बोझा ढोने वाले कर्मचारी सोचते, इससे तो हम हड़ताल में न आते वही ठीक था। कार्यालय में बोझ इकट्ठा हो रहा है। कमर तो हमारी ही टूटेगी। इसमें सुखी वे थे, जो भीतर-बाहर एक से थे। जो कार्यालय में हाजिर रहकर भी काम नहीं करते थे, उनके लिए यह बाहरी जीवन भी वैसा ही था। ऐसे हड़ताली सबसे सुखी थे। उनका मन था कि यह हड़ताल अनंत काल तक चले। मानो इन्होंने एक अपनी तरह भी अनंतकाल हड़ताल-पार्टी की रचना कर ली थी। इन्हें काम की ही फिक्र कभी न रही, तो तनख्वाह कटने की फिक्र क्यों हो। इन्हें जो कुछ अब तक मिला था, वही सारे का सारा मुनाफे में था। धीरे-धीरे काम में रुचि रखने वाले लोग, जो इस हड़ताली बेकारी से ऊब गये थे, बोलने लगे—हम तो अब ड्यूटी पर जायेंगे, हड़ताल कोई वापस ले न ले। लोग टेलीफोन से 'ड्यूटी ज्वाइन' करने लगे, तार से ड्यूटी ज्वाइन करते। लोग हिम्मत करके ग्राफिस जाने लगे। हड़ताल अनंतकाल तक चलाने में रुचि रखने वाले लोग इन्हें रोकते। इनका मुँह काला करते। डराते-धमकाते। जाने वालों के लिए प्रश्न था—कैसे जाएँ ? सोचते कि हमारे साथ कोई गुजारने वाला तो अभी गुजार देगा। आगे उसे सजा मिलती या नहीं, यह किसने देखा है। लोग कार्यस्थलों पर तो आने लगे, पर अन्यों का नजर आना पसंद नहीं करते। छिपे रहते। कोई तो टेबिल के ही नीचे था, तो कोई स्टोर के अँधेरे में ही चुपचाप बैठा रहकर तसल्ली करता तो कोई आफिस के पीछे के भाग में छिपकर ही खुश था। स्वयं को सुरक्षित रखने की दृष्टि से कोई शौचालय को ही सर्वथा उपयुक्त मानता। वे हाजिरी रजिस्टर पर भी प्रकट होना नहीं चाहते थे। उन्हें डर था कि कोई उस क्षण में अनंतकाल-हड़ताल के सदस्यों की पार्टी से यह सकता है और तब उनकी भौतिक सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। यों भी हड़ताल और काम पाँच-चार दिन चले। सरकार फिर बोली—अब अमुक तारीख तक मैं दरवाजा खोले बैठी हूँ। इस तारीख के बाद तुम्हारे लिए हमेशा को दरवाजा बन्द।

अब हड़ताली कर्मचारियों में फिर खलबली मची। वे आपस में बात करते—यह तो आखिरी वक्त है। अपने-अपने वेतन की दृष्टि से नफे-नुकसान का हिसाब लगाते। कोई यह भी कहता कि सरकार अतिरिक्त मँहगाई भत्ता स्वीकार भी कर ले तो भी हड़ताल के दिनों की वेतन-कटौती से ही मुझे यह इतने वर्ष तक अतिरिक्त मँहगाई भत्ता चुका सकेगी। यह हिसाब लगाकर वह सिर धुनता। लोग आपस में पूछते—आफिस चलें चलें, कोई भी साफ नहीं कहता। नेता भूमिगत थे। बचे हुए हड़तालियों को कोई भी यह आश्वासन नहीं दे पाता कि 'तुम्हारी नौकरी बरकरार रहेगी।' अब यह नजर आने लगा कि हड़ताल नेताओं द्वारा वापस लिये बिना ही अलग-अलग अनुयायियों द्वारा अलग-अलग ही वापस ले ली जाएगी। नेताओं के

17

कहानी की खोज

□

चैनराम शर्मा

'कहाँ से सूझती हैं इन्हें ऐसी बातें ? कैसे लिखते हैं इतनी लम्बी-चौड़ी गप्पें ? कैसे मिल जाता है इन्हें मनमाना प्लॉट ? बिल्कुल असत्य, पर लगने में सच्ची, पूर्ण परिकल्पित, पर आभास वास्तविकता का। किसी के भावों का प्रभाव, तो किसी की लेखनी का चमत्कार, किसी के मानस की उत्पीड़न, तो किसी के रंजन का राग। किसी में समाज का दर्पण, तो कोई समाज के दर्पण में। कोई अतीत की अंतड़ियाँ खींच रहा है, तो कोई भविष्य का भाग्य निरख रहा है। कैसे-कैसे होते हैं ये कहानीकार ? वाह ! परमात्मा ने इन्हें भी खूब रचा है।"

मैं अकेले में कहानी और कहानीकारों की हकीकतों का उल्लेख कर रहा था कि श्रीमतीजी आ गईं और गरजने लगीं—"हर समय कुछ न कुछ बड़बड़ाते ही रहते हो। न किसी काम की चिंता, न खाने पीने ही की सुध। दिन, रात कहानी······कहानीकार······कहानी······कहानीकार। कहीं पागल हो जाओगे कहानी के पीछे !"

ऐसा कहते-कहते श्रीमती जी ने प्याली में चाय उडेल कर मेरे सामने रख दी। मेरे विचारों की जंजीर टूट चुकी थी। मैं झेंपता हुआ श्रीमती जी का मूड लाइन पर लाने लगा।

"बड़ी देर कर दी तुमने चाय में ! आज मैंने ऑफिस से छुट्टी रखी है। दीपावली का नया स्टॉक आया हुआ है। तुम्हारे लिए एकाध नई डिजाइन की साड़ियाँ, ब्लाउज-पीस वगैरह-वगैरह लेने क्लाथ-मार्केट जाना है।"

"हाँ, जैसे अपने लिए तो कुछ भी लाना ही नहीं हो।" वह मुँह बनाती हुई बोली।

विषय बना हुआ था कि वह मिलेगा भी या नहीं। मगर मेरा कहानीकार अब मेरे पक्ष में हो चुका था। वह मुझे ढाढस बँधाये मेरे पास ही रहता था। जब कभी मैं उसे देख नहीं पाता तो पास वाले गन्दे नाले में झाँक कर फिर उसे बुला लेता था।

किस समय दिन के दो बज गये? पता नहीं।

"वह ऊँटों की कतार! एक के बाद एक आते हुए तथा एक की नाक को दूसरे की पूँछ से बाँधे हुए अनुशासनपूर्ण! सभी की पीठ पर हैं घास के गट्ठर!" सोचा, शायद इन्हीं में मिल सकता है मेरा प्लॉट। मगर वे धीरे-धीरे आँखों से ओझल हो गये। मेरा कहानीकार विश्राम की बैलगाड़ी पर चढ़ गया। मैं उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा में था कि उसने इन्कारी में अपना हाथ हिला दिया। एक युवती पैरों में चप्पल पहने छोटे-छोटे डग भरती हुई मेरी ओर बढ़ रही थी। सोचा, शायद मेरी कहानी की नायिका आ रही है। किन्तु उसकी गोद में शिशु देखकर मुझे श्रीमती जी का भान हो आया। बेचारी कितनी दुःखी है निस्सतान होने से? विधि ने भी कैसा खेल रचा है? जहाँ फूल खिले हैं वहाँ देख-भाल करने वाला माली नहीं है और जहाँ माली तरसती निगाहों से बराबर टुकुरता है वहाँ पुष्प खिल ही नहीं पाते।

"कहाँ चला गया?" मुझे कहानीकार ने झिंझोड़ कर कहा। मैं सचेत हो गया और फिर अपने मार्ग पर आ गया। जल्दी-जल्दी ठेला, खोंचा आदि एक-एक करके निहारने लगा। भोंपू बज उठा, पाँच बज गये। मिल के मजदूर चेहरों पर थकावट लिए अपने-अपने प्लॉट का परिमार्जन करते हुए आ रहे थे। कॉलेज के विद्यार्थी अपनी फिल्मी चालों से चौराहे पर शान सँजो रहे थे, खो रहे थे। कार्यालयों से बाबू, स्कूलों से शिक्षक और शहर से कृषक व मजदूर लोग अपने दिन भर के परिश्रम का तोष पाकर अपने-अपने निवास को लौट रहे थे। मैं अपने आप को फटकार रहा था—"कैसा मूढ़ है? सारा दिन गँवा दिया। न खाने-पीने की सुध रही, न बाजार का काम हुआ। ऑफिस से छुट्टी रखने पर एक मामूली-सी वस्तु नहीं पा सका! क्या कर सकेगा तू जिन्दगी में? सभी तरफ असफलता ही असफलता।"

मैं भी क्या करता? अपने भगवान को कोस रहा था। "मुझे कोई जयशंकर का "छोटा जादूगर" तो नहीं चाहिए था, या कोई प्रेमचन्द की "पंचायत" की तो आवश्यकता नहीं थी, अथवा रामकुमार का "पहला-पहला अभिनय" तो नहीं मँगना था? मुझे तो चाहिए था एक मामूली सा प्लॉट।"

सूर्य अस्ताचल की ओर द्रुत-गति से चल रहा था। पास के गटर की सड़ी बदबू बस-बस के साथ बढ़ती आ रही थी। मेरा कहानीकार मुझसे पूर्णतया विरक्त हो चुका था। मैं अपने आपको उस गटर के कीड़े से भी बदतर मानकर वहीं बैठ

"हाँ, हाँ...... मेरे लिए भी शर्ट वगैरह के लिए कह तो रहा हूँ" मैंने कहा।

वह बिना कुछ सुने जल्दी-जल्दी चली गई। मैंने टेबुल पर पड़ी चाय की प्याली को धीरे से उठाया, कुछ झुका, और उसे ओठों से लगाया। मन में उठने वाले विचारों के तांते में ही मैंने प्याली में से एक धुँधले से चेहरे को मेरी ओर झाँकता पाया। वह मुझे एक नजर से देख रहा था, मेरे ओठों पर जिह्वा फिराने की नकल कर रहा था, मेरी आँखों में आँखें डाल रहा था। मैं मन ही मन कह उठा—"क्या तुम हमारी बातें सुन रहे थे? क्या तुम इन्हें लिख डालोगे? हमारी कहानी लिख डालोगे? लेकिन तुम क्या कर पाओगे? मैं तुम्हें दो ही घूँट में समाप्त कर देता हूँ।" मैंने जोर से प्याली की किनारों को ओठों में दबाकर चाय का चुम्बन किया। अंतिम चुस्की तक वह चेहरा मुझे घूरता रहा। मैं भी उसे घूरता रहा, जैसे किसी कहानीकार को।

जैसे-तैसे चाय पीकर चौराहे की ओर चल पड़ा। आँखों में वही चाय की प्याली में रमने वाला धुँधला सा कहानीकार समाया हुआ था। मैं उससे कुछ पूछता था पर वह निरुत्तर था। मैं सोच रहा था, कोई अच्छा सा प्लॉट सुझा दे तो कहानी लिख डालूँ। मगर वह बड़ा कठोर बना हुआ था। हाँ, यदा-कदा वह श्रीमती जी के लिए कपड़ों का स्मरण अवश्य करवा देता था। लेकिन मैं भी मन ही मन दृढ़ निश्चित था कि आज कोई न कोई प्लॉट लेकर ही घर लौटूँगा और रात्रि में ड्राइङ्ग रूम में ट्यूब-लाइट में आरामकुर्सी पर बैठकर कहानी रच ही लूँगा। इसी निश्चय के साथ मैं अपने कहानीकार के साथ चौराहे पर पहुँचा।

जिस शीघ्रता से घर से निकला, उसी शीघ्रता से कहानी का प्लॉट तलाशना प्रारम्भ कर दिया। सड़क के किनारे एक पत्ते-झड़ते गुलमोहर के नीचे अपने कदम को थाम कर निगाहों की दौड़ प्रारम्भ कर दी। मेरा कहानीकार यदा-कदा मेरे समक्ष नाच उठता था और चुटकी ले बैठता कि "मैं तो चाय की घूँट में ही समाप्त हो गया हूँ।" मैं उसे सादर, सविनय याचना कर रहा था कि "हे मेरे मानस के हमदम! आओ, कोई कहानी बना जाओ।"

चौराहे पर लगी भीड़, पींपों और हॉर्न की ध्वनियाँ रुकने और चलने का संकेत कर रही थी किन्तु मैं बिना उनकी परवाह के इंटरेस्टिंग प्लॉट तलाशने वाली दौड़ लगा रहा था। कभी पास, कभी दूर। कभी ऊपर बैठे कौओं की ओर तो कभी पास खड़े [illegible] थे। कभी सामने के फुटपाथ पर पड़े कुष्ठ रोगी को तो कभी [illegible] पर [illegible] बजाते [illegible]। कारें, ट्रकें, स्कूटर, रिक्शे बराबर इधर-उधर दौड़ रहे थे। [illegible] और [illegible] की [illegible] भीड़ थी। न जाने मैं किसे ढूँढ रहा था और वह कहाँ छिपा हुआ था। मैं भी [illegible] का

आगे [illegible]

विषय बना हुआ था कि वह मिलेगा भी या नही । मगर मेरा कहानीकार अब मेरे पक्ष में हो चुका था । वह मुझे ढाढस बँधाये मेरे पास ही रहता था । जब कभी मैं उसे देख नही पाता तो पास वाले गन्दे नाले मे झाँक कर फिर उसे बुला लेता था ।

किस समय दिन के दो बज गये ? पता नहीं ।

"वह ऊँटो की कतार ! एक के बाद एक आते हुए तथा एक की नाक को दूसरे की पूँछ से बाँधे हुए अनुशासनपूर्ण ! सभी की पीठ पर हैं घास के गट्ठर !" सोचा, शायद इन्हीं मे मिल सकता है मेरा प्लॉट । मगर वे धीरे-धीरे आँखो से ओझल हो गये । मेरा कहानीकार किसान की बैलगाडी पर चढ गया । मैं उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा में था कि उसने इन्कारी में अपना हाथ हिला दिया । एक युवती पैरो मे चप्पल पहने छोटे-छोटे डग भरती हुई मेरी ओर बढ रही थी । सोचा, शायद मेरी कहानी की नायिका आ रही है । किन्तु उसकी गोद मे शिशु देखकर मुझे श्रीमती जी का भान हो आया । बेचारी कितनी दुःखी है निस्सतान होने से ? विधि ने भी कैसा खेल रचा है ? जहाँ फूल मिले हैं वहाँ देख-भाल करने वाला माली नहीं है और जहाँ माली तरसती निगाहो से बराबर टुकुरता है वहाँ पुष्प खिल ही नही पाते ।

"कहाँ चला गया ?" मुझे कहानीकार ने झिंझोड कर कहा । मैं सचेत हो गया और फिर अपने मार्ग पर आ गया । जल्दी-जल्दी ठेला, खोचा आदि एक-एक करके निहारने लगा । भोंपू बज उठा, पाँच बज गये । मिल के मजदूर चेहरो पर थकावट लिए अपने-अपने प्लॉट का परिमार्जन करते हुए जा रहे थे । कॉलिज के विद्यार्थी अपनी फिल्मी चालों में चौराहे पर शान सँजो रहे थे, खो रहे थे । कार्यालयो से बाबू, स्कूलो से शिक्षक और शहर से कृषक व मजदूर लोग अपने दिन भर के परिश्रम का तोष पाकर अपने-अपने निवास को लौट रहे थे । मैं अपने आप को फट-कार रहा था—"कैसा मूढ है ? सारा दिन गँवा दिया । न खाने-पीने की सुध रही, न बाजार का काम हुआ । ऑफिस से छुट्टी रखने पर एक मामूली-सी वस्तु नहीं पा सका ! क्या कर सकेगा तू जिन्दगी मे ? सभी तरफ असफलता ही असफलता ।"

मैं भी क्या करता ? अपने भगवान को कोस रहा था । "मुझे कोई जयशंकर का "छोटा जादूगर" तो नही चाहिए था, या कोई प्रेमचन्द की "पंचायत" की तो आवश्यकता नहीं थी, अथवा रामकुमार का "नहला-दहला अभिनय" तो नहीं खेलना था ? मुझे तो चाहिए था एक मामूली सा प्लॉट ।"

सूर्य अस्ताचल की ओर द्रुत-गति से चल रहा था । शाम के गटर की बदबू पल-पल के साथ बढ़ती आ रही थी । मेरा कहानीकार मुझसे पूर्णतया विरक्त हो चुका था । मैं अपने आपको उस गटर के मैले से भी बदतर मानकर वहीं बैठ

गया । गटर का गन्दा पानी भी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच तो रहा है ? पर मैं, जो सब कुछ होते हुए भी असहाय की भाँति बैठा था । "घर जाऊँ तो किस मुँह से जाऊँ ? श्रीमती जी को क्या जवाब दूँगा ? उनके तानों से रात-भर कैसे कटेगी ?" विचार ही विचार में फिर मेरा कहानीकार आ टपका । ऊपर खम्भे की रोशनी, नीचे गटर और गटर से मेरी ओर झाँकता मेरा कहानीकार । मैंने सोचा, शायद मेरे से विदा लेने की प्रतीक्षा में है । तब तक एक अखबार का पुलन्दा बहता-बहता मेरे और कहानीकार के बीच तैरने लगा । मैंने बड़ी तत्परता से पुलन्दा उठा लिया । ऐसा लगा, जैसे मेरा कहानीकार मुझे उपहार में, यह देकर मुझसे विदा हो चला है ।

अखबार का पुलन्दा लेकर मैंने विचित्र-सी आनन्दानुभूति की । मगर यह कोई कहानी का प्लॉट तो नहीं था ? मैंने विश्वास से पुलन्दे का धागा उधेड़ना आरम्भ किया । यकायक मिस्टर फ्रैंकलीन का स्मरण हो आया । उन्होंने नाले में बहती हुई पेन्सिल को अपना एडवेन्चर बनाकर "फ्रैंकलीन्स ऐडवेन्चर" के नाम से इंगलिश लिटरेचर को सौंप दिया तो क्या मैं इतने बड़े पुलन्दे को पाकर भी कुछ पाने में समर्थ नहीं हो सकता हूँ ? मेरी हिम्मत बढ़ी । इसका कारण यह भी था कि अवश्य पुलन्दे में कोई चीज होगी । यदि मनमानी वस्तु मिल गई तो कम से कम श्रीमती जी के श्लोक तो नहीं सुनने पड़ेंगे ।

अखबार में अखबार, उसमें फिर अखबार । बड़ी हिफाजत से समेटा हुआ । अब रुई निकली । बिल्कुल मुलायम रुई । रुई की परत हटी । मैं चौंक उठा । मुझे स्वप्न में भी उम्मीद नहीं थी कि इसमें यह हो सकता है । मैंने अपने आप पर विश्वास नहीं किया । भगवान से प्रार्थना की कि "हे प्रभु ! यदि यह स्वप्न हो तो निश्चित ही कहानी बन जायगा मगर जो कुछ है, वास्तविक हुआ तो क्या होगा ?"

रुई में से निकला था एक नवजात शिशु ! शायद उसकी माँ अभी प्रसव-पीड़ा का अनुभव भी नहीं करने पाई होगी कि यह मेरी पीड़ा का कारण बनकर आ गया । लेकिन मैं क्या करता ? मेरे दिमाग में एक झटका-सा लगा । मैं निस्तब्ध-सा उसे देखता रहा । मानो वह मुझसे पूछ रहा था—"क्या तुम दिन-भर से मेरी ही तलाश में थे ?" मैं निरुत्तर था । शहर के सभ्य समाज का चित्रण मेरे समक्ष जल्दी-जल्दी प्रस्तुत होने लगा । फैशन का प्रेत, कॉलेज की फैशनेबल शिक्षा, सिनेमा की पाश्चात्य-सांस्कृतिक झलकियाँ, परिवार नियोजन के असामान्य, अमानवीय कृत्य-एक-एक करके मेरे सामने अपना नग्न नर्तन करने लगे ।

कहानीकार समाज की गन्दगी दूर करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु समाज गन्दगी में ही अपनी कहानी फेंक देता है । मानव के उच्च विचार अमूल्य पुस्तकों में

लिपिबद्ध होकर आलमारियों को भर देते हैं मगर उनके कृत्य उसी की गन्दगी में गोता लगाकर पाशविक प्रवृत्ति को भी मात कर देते हैं।

मैंने उस आदर्श समाज की घृणित वस्तु को सीने से लगाया। सोचा, मुझे मेरा प्लॉट ही नहीं, सारी कहानी मिल गई है। मुझे पूर्ण उम्मीद थी कि आधुनिकता के साथ-साथ मानवीय दृष्टिकोण से पली हुई श्रीमती जी इसे अवश्य स्वीकार कर लेंगी।

□□□

18

कोई तार टूटा हुआ

□

सुषमा अग्निहोत्री

पेपरवेट भी मार डाला। और तब उसे खीझ आने लगी। सिर को झटक कर याद करने की बहुत कोशिश की पर ·· ····। आखिर उसने पेन रख कहाँ दिया। इस कमरे में उसके अतिरिक्त कोई नहीं आता। यह उसका निजी स्टडी-रूम है। फिर पेन··· कहाँ··· कब···कैसे····। वह इन शब्दों में सन्तोषजनक तारतम्य बैठा नहीं पा रहा था। वह बड़े धैर्य से खीझ को परे हटाकर समस्या का समाधान ढूँढ़ना चाहता था। पर वह भी कि·····। जैसे यह खीझ उसे इस विपत्ति में अकेले छोड़ना विश्वासघात-सा पाप समझ रही थी। उसने सोचा आज चाहे जो हो जाए, वह यों नहीं मानेगा। आज पेन ढूँढ़ना ही होगा। अन्यथा पेन खोने का यह सिलसिला······ अमानवीय जंगली आकृतियाँ·······खीझ····और········। वे धमाके·······हत्यायें······ गँवार बोली ·· ·· गालियाँ ·· ····परिस्थितियाँ और उनका षड्यन्त्र·······। और भी न जाने क्या-क्या···· शायद एक पूरी फौज की फौज उसका·······उसके जीवन का पीछा नहीं छोड़ेगी। 'पीछा छोड़ना' शब्द उसके दिमाग की ऊपरी पर्त पर तैरने लगा। उसे लगा वह स्वयं भी इन शब्दों से चिपके रहा है। जैसे यह शब्द न होकर उसकी पंचवर्षीय साधना-जन्य उसकी थीसिस की संकेत संक्षिप्ति हों। पर तभी उसे लगा कि वह इन शब्दों से इस समय केवल इसीलिए उलझ पड़ा है कि उसका पेन इन सब में कहीं खो गया है और बिना पेन के वह अपनी रचना समय पर क्या, कभी नहीं भेज सकेगा। उसके लेख······ उसकी योजनाएँ······· सभी कुछ अधूरा पड़ा है। बिना पेन के आखिर कोई·······। तभी अचानक उसे अपने दाहिने हाथ के कंधे पर हुए उस धमाके का ध्यान हो आया। हाँ, यही हाथ था·······। यहीं नहीं·····यहाँ ·····हाँ, ठीक इस जगह धमाका हुआ था।·······और धमाके के के साथ ही उसके पेन की निब टूट गई और उसने उसी समय महसूस किया

अपने आस-पास

था कि उसके अंदर का कोई सुनहला तार टूट गया है। सुनहरे-से चितकबरे पेन की निब की तरह ही कोई सुनहला-सा तार और उसके टूटे रेशे बिखर कर उसके मन पर छा गए थे। और तभी से उसकी आस्था दिल-दिमाग से बाहर घूमने को कुल-बुलाने-सी लगी थी। पर उसने बड़े धैर्य से उस सब कुछ को हाथ में पकड़ने का प्रयास किया था। और उसकी यह कोशिश ही उसे यहाँ इस जंगल तक ले आई थी। वह नहीं चाहता था कि वह किन्हीं जंगली वाक्यों से उलझे, पर ......।

अब उसने नये सिरे से कमरे की तलाशी लेनी चाही। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका पेन सचमुच में.........। मेज-कुर्सी, राईटिंग, पैड, उनमें-बिखरे कोरे और रंगीन कागज और यह ढेर-सी किताबें.........आज वह किसी को भी छोड़ेगा नहीं। देखे कैसे कोई उसका पेन इस तरह गुपचुप गुम कर सकता है। मेज की किनारों को देखकर उसने मेज की ड्रॉर खोली। उसकी अंगुलियाँ पत्रों को टटोलने लगीं। उसने देखा.........हाँ, यही तो वह आकृति है। तो यह इतनी भद्दी हो गई ? वह जैसे अपने आप से पूछ बैठा। एक लेटर पैड पर बड़ी भद्दी सी आकृति भद्दे अक्षरों में उसके सामने खड़ी हो गई थी। उसका मन हुआ इसी पर लिख दे—मेरा पेन छोड़ दो। पर तभी वह चिड़चिड़ा पड़ा—लिखे कैसे ? उसका पेन ? पेन ही तो ......और इसीलिए तो ......। और वह फिर पेन ढूँढने में व्यस्त हो गया। एक-एक करके सारी अलमारियाँ उसने छान मारीं। पर पेन ......। अब यह अंतिम अलमारी भी क्यों छोड़ी जाय। उसने सोचा। और अलमारी की तलाशी शुरू कर दी। वैसे इस अलमारी को वह बहुत कम, बहुत-ही कम, कभी-कभार ही डिस्टर्ब किया करता है। क्योंकि इसमें उसकी बेशकीमती पुस्तकें रखी हैं। शीशे की इसी अलमारी में उसकी थीसिस सारी यातनाओं से मुक्त बिल्कुल सुरक्षित है। उसने नज़रें उठाकर देखा। सारी पुस्तकों में सबसे वृहद और सबसे अधिक बोझीली पुस्तक वही थी। 'थीसिस' शब्द पर न जाने क्यों उसे अजीब-सी गुमसुम हँसी आ जाती है। वह सोचने लगा—इसी थीसिस के लिए उसने पूरे चार या पाँच वर्ष आदिवासियों की बस्तियों में भ्रमण और निवास किया था। इन पूरे वर्षों में वह जंगली जीवन बिताता रहा था। और तब जाकर उस पर्वतीय प्रदेश में उसी पेन से यह तीर्थ यात्रा पूरी हुई थी, जिसकी तलाश में आज वह इतना व्यग्र हो उठा है। उसने थीसिस हाथ में उठा ली और टाइटिल पढ़ने लगा—'ब्रज प्रदेश की अर्तिनिधि नारियाँ : सौंदर्य तात्त्विक अध्ययन'। एक रंगीन-सी खिलखिल उसके मुँह से कुलबुलाकर बाहर आ पड़ी। उसने जब से थीसिस के लिए इस विषय का चुनाव किया है, बराबर यह खिलखिल उसके मुँह में बनी रहती है। उसे याद आया कि जब वह मंदिर में इस अनुष्ठान की पूर्ति के लिए मनौतियाँ कर रहा था तो उसने

कहा था……। कहा नहीं था, वरन् उसके मुँह से अनायास कुछ शब्द बाहर आ गये थे : ओ बुरचो…… बालाजी महाराज जो ताने मोकों जा डिगरी नांय दई तो तुम रँडुआ……। बस यहीं वह ब्रेक लग गया था।……और तब उसने उसी समय दंडवत मुद्रा में भगवान से माफी माँगी थी कि निरन्तर आदिवासियों की बस्तियों मे भटकते रहने और 'गाली' शोध का विषय होने के कारण ही उससे यह भयानक भूल हो गई है। वरना वह स्वयं एक शिष्ट सुशिक्षित व्यक्ति रहा है। उसके उद्देश्य महान रहे हैं। वह बड़ा संयमी भी रहा है। भगवान स्वयं जानते हैं कि गालियों की खोज करते हुए उसने कभी किसी आदिवासी को गाली का शिकार नहीं बनाया है। भगवान से यह भी नहीं छिपा है कि अपने महान उद्देश्यों की पूर्ति में उसने स्वयं को किसी प्रकार खपा दिया है। अपने भटकाव के बीच जब वह उस महानगर में पहुँच गया था, तो वहाँ उसे अपने दद्दा के सहारे बहुत कुछ मिल सकता था। नामी निर्देशक भी और डिग्री सुलभ विषय भी……। पर……। अत: प्रभु उसे क्षमा करें और इस वर्ष उसका यह अनुष्ठान ठीक तरह पूरा करादें…… उसे भली प्रकार ज्ञान है कि उसका वह अनुष्ठान किस ढंग से पूरा हुआ। उसे यह विश्वास नहीं था कि भगवान ने उसके शब्दों को ही पकड़ा है, अर्थों को नहीं। और वह निश्चित हो गया था।……और उसके मुँह से भद्दे-से शब्दों की एक गाली दोनों ओठों के बीच आकर वापस चली गई। उसे थीसिस का अनुष्ठान पूरा हो जाने के बाद भी एक विशेष प्रकार की चिड़चिड़ अक्सर बनी रहती है। उसे लगता रहा है कि उसकी सारी महत्वाकांक्षाएँ यान्त्रिकता में डूबकर रह गयी हैं। शायद इसी से वह इस पुस्तक को निश्छल प्यार नहीं कर सका है। कभी-कभी तो उसे इस भूँवार थीसिस से ही चिढ़ होने लगती है। पर फिर दूसरे ही क्षण उसे इस पर बेहद प्यार आने लगता है……। असल में उसे वे अमानवीय आकृतियाँ…… अमानवीय शब्द …परिस्थितियाँ ……और वह सब अमानवीय…… या इस अमानवीयता से ही चिढ़ होती है। उसने थीसिस को उठाकर मेज पर इस तरह रखा जैसे वह पाने के लिए नहीं वरन उन्हीं अमानवीय आकृतियों को ये भेंट……। उसने दो-चार पेज पलटे।……और तभी एक चित्र सामने आ गया। ब्रज प्रदेश की गालियों के सौन्दर्य तत्त्व का विश्लेषण करते हुए चित्र प्रस्तुत किया गया था। इस चित्र में नीचे लिखा था—ब्रज प्रदेश की एक स्त्री गालियों की वर्षा……और फिर गालियाँ… फिर निष्कर्ष। इन गालियों का प्रयोग स्त्रियाँ मुख्यत: अपने परिजनों के लिये करती है। वह उन गालियों को पढ़ने लगा…… आग लगे……। रांड……। मर जा……। निपूता……। उसने दो-एक पेज और उलटे तो एक रोचक चित्र पर उसकी आँखें ठहर गईं। एक फोरवर्ड-सी स्त्री का चित्र था यह। लिपस्टिक के रँगे होंठ…… नुकीली लम्बी आँखें……बड़ा-सा जूड़ा…… और बड़ा-सा पर्स……।

आने आस-पास

पर्स की जिप खुली थी और वह स्त्री एक-एक करके कुछ गालियाँ पर्स मे रख रही थी। मसलन नालायक……, नालायक की बच्ची……, निकल जा ……; और……। इस भद्दे शब्द पर उसे फिर हँसी आ गई और वह आगे पढने लगा। पढते हुए उसे यह अग्रिम अंश जहाँ बिंब और प्रतीको पर विचार किया गया था, पहचाना-सा लगा। आगे के सभी शब्दो पर पहचान की रेखाएँ उभरने लगी। उसे लगा यह सब उसके उसी सुन्दर पेन के अक्षर हैं। तो पेन ……? ? ?

पेन ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह तंग आ गया। छोटे-छोटे कतरो का एक गुच्छ-सा आकर उसके दिमाग के पिछवाड़े की नसों पर उभरकर तैरने लगा। यकायक उसकी तबियत गिरने लगी। उसने हाथ बढ़ाकर मेज से दूध का गिलास उठाना चाहा। और फिर उठा भी लिया पर ज्योही मुँह से गिलास लगाया कि उसकी तबियत बुरी तरह गिरने लगी। दूध का गिलास फर्श पर गिरा और वह बिस्तर से आ लगा। उसे बहुत बेचैनी हो रही है। वह चुपचाप रजाई मे मुँह करके लेटना चाहता था पर बहुत रोकने पर भी उसके मुँह से कराहें बाहर आ रही थी और अपनी ही यह आहे उसे चैन नहीं लेने दे रही थी। अजीब किस्म की हाय-हाय सी मची पड़ी थी। छोटे-छोटे कतरों का वह गुच्छ गुबार बनकर उमड रहा था। धीरे-धीरे कराहे तेज होती गईं। उसने थोड़ा-सा उठकर सिर को तकिया मे गडा दिया। उसने करवट बदलनी चाही पर उधर कराहे रेंगती-सी नज़र आईं तो वह माथे और आंखो को तकिया मे धसकर गडाकर उल्टा-सा लेट रहा। अब वह गुबार फिर कतरो मे बिखर कर बाहर आने लगा था। इसके साथ-साथ दिमाग के पिछवाडे की हलचल शात होने लगी। पर तभी कमज़ोरी की एक लहर-सी दिमाग के आगे सरकने लगी। वे सारे-के-सारे कतरे गुमसुम-से आगे आते जा रहे थे … और वह था कि जूझे जा रहा था। वह पेन ढूँढने के लिए उठना चाहता था पर……। उसे लग रहा था उसका पेन कहीं भी हो सकता है। इन कतरो के गुच्छ मे…… या गुबार……आगे सरकते कतरे…… थीसिस …… थीसिस की यांत्रिकता मे डूबी उसकी महत्वाकांक्षाओ मे ……उन अमानवीय आकृतियो……या ……या……उस सुनहले से माथे वाले……टूटे पेन …… या स्वयं उसके मन के उस सुनहले से तार…… उसी तार में जो टूटा था ……और फिर भी उससे चिपका हुआ है…… और यह कतरे ……। एक जोर की चीख उसके मुँह से निकली—मेरा पेन……!

19

अनन्त सुहाग

[]

मनोहर गिरी

पत्र रेनु का था। लिखा था —"दर्द देने वाले ! दवा भी दो दे।" और बहुत सारी बातें लिखी थी पत्र में, सारांश पढ़ कर खो सा गया। कुछ देर बाद उ अपना विवेक सम्भाला। सोचने लगा कैसी विचित्रता ने घेर लिया। कुछ क्षणों अनीत भविष्य की भीषण घटना न बन जाय। मनुष्य को बिना सोचे विचारे भावु मे विचलित नहीं होना चाहिये। न जाने उस दिन मुझे क्या हो गया था। मैं भूल गया था कि मैं देश का रक्षक हूँ ? मैं किसी भी वक्त मौत का आलिंगन सकता हूँ। मुझे किसी के जीवन से इस तरह खेलने का क्या अधिकार था ? पर है दुखातिरेक मे भी मनुष्य पथ भूल जाता है। मैंने रेनु के मन मे जो आग लगा दी वह अब धीरे-धीरे धधकती जा रही है।

लोकेश कलम थाम पत्र के प्रत्युत्तर में सिर्फ एक पंक्ति लिखता है।

"कल उदयपुर आ रहा हूँ। चार बजे नेहरू गार्डन मे मिलना।" पत्र डाक डलवा दिया। पर दिल मे एक उधेड़-बुन मच गई। कुछ चाह थी, कुछ अनिष्ट। भय था। कुछ समस्याएँ थीं, कुछ सत्य था, कुछ असत्य था, कुछ नीति थी छ अनीति थी। रंग-बिरंगी आँधियाँ लोकेश के हृदय व मस्तिष्क में चक्कर काटं गी और जीवन की समीक्षा करने लगा।

जीवन मे हर क्षण आँधियाँ आती रहती हैं ; मानो जीवन एक वर्तुलाकार तान है। वह बाहर और अन्दर न जाने कितना आवेग व तेज लिये हुए फिरता है। य और असत्य का निर्णय सरल नही है। भलाई व बुराई का निष्कर्ष भी बड़ी मझन का है। क्या उचित है क्या अनुचित, इसकी पहचान परिणाम बनाता है। तनी ही बार सामने का दर्पण भी गलत प्रतिबिम्ब बताता है। विकृत समाज अच्छी

शक्ल को खराब कर देता है । क्या वास्तव में समाज सिद्धांतों पर खड़ा है ? शा
समाज के सिद्धांत झूठे हैं । संसार स्वार्थों पर टिका है । उपहार, प्यार, त्याग, बलि
सब के मूल में स्वार्थ निहित है । यह संसार प्रतिकार का स्वरूप है । कोई किसी
कुछ नहीं देता । जो कोई कुछ देता है, वह मूल्य लेकर देता है । माँ की ममता, बा
का प्रेम, प्रिय और प्रिया का प्रणय सब में सौदा है । पिता पुत्र से अधिकार
माना मानता है—भाई भाई से बदला चाहता है ।

किन्तु ऐसा ही तो नहीं है । अन्धकार है तो प्रकाश भी है । बुरे हैं तो
भी हैं । तुम असोच्य के लिए चिन्ता क्यों करते हो, दुनिया में मनुष्य आता है,
मिलन होते हैं, टूटते हैं ।

अनेकों विचार की आंधियाँ मानो लोकेश के हृदयरूपी दीपक को बु
डालना चाहती हैं । किन्तु, जो अग्निपान करता है, जिसका जीवन देश की सीमा
पर गोलियों और बम के विस्फोटों में गुजरा हो, वह कब बुझ पाता है ।

लोकेश के रास्ते कठिन थे । वह भला भी था, जागरूक भी और भावुक
था । लोकेश का लक्ष्य अनिश्चित था । उसकी सीमाएँ भावनाओं में खोई हुई थ
वह संसार में खेल रहा था—इन खिलौनों में जो दीखने में सुन्दर, बोलने में म
किन्तु कच्ची मिट्टी के थे । दूसरे का तो क्या, लोकेश स्वयं को अपनी दुनिया का
नहीं था । शायद किसी को भी अपना संसार विदित नहीं होता ।

यह संसार एक अद्भुत रहस्य है ।

सोचते सोचते लोकेश उठा ।

उदयपुर का नेहरू गार्डन । चारों तरफ फतहसागर का नीला पानी लो
के हृदय में विचारों के उतार-चढ़ाव सा उतर-चढ़ रहा था । यह वही स्थान
जहाँ लोकेश ने रेनु को चार बजे मिलने को लिखा था । चार बजकर कुछ मिनट
रेनु आई । लोकेश ने रेनु को और रेनु ने लोकेश को इस तरह से देखा जैसे प्र
प्रीति के प्यारे एक-दूसरे को देखते हैं । एक-दूसरे के साथ घूमते हुए वे उस भीम
पानी के किनारे बैठे । लोकेश कहता है कि मुझे तो तुमसे बहुत कुछ कहना थ
किन्तु सामने आते ही सब कुछ भूल जाता है । रेनु भी यही वाक्य दोहराती है ।

दोनों किनारे पर पास में बैठ गये । लोकेश कहता है "मैं रहता यहाँ हूँ —
मन तुम्हारे पास पड़ा है ।"

"तभी तो इतने दिन बाद हमारी याद आई ।"

"याद तो रोज आती थी ।"

"शायद नौजवान लड़कियों के सामने पुरुषों का यह रटा हुआ वाक्य है। याद आती तो बिन बुलाये आते।"

"यह तो एक चाह होती है कि कोई किसी को बुलाये।"

"आप जानते हुए भी क्यों न समझ पाये यही तो मैं चाहती थी।"

"बहुत बार मनुष्य का चाहा नहीं होता। चाह कुछ और होती है, होता कुछ और है। मैं आना चाहता था पर आ न सका, फँस गया।"

"फँसाने वाले फँसते कहाँ हैं। कैद तो मैं हो गई हूँ। क्या तुम्हें मेरी दशा का पता है? मैं न घर की रही हूँ, न बाहर की।"

"और मैं घर का भी हूँ और बाहर का भी। बात यह है कि रेनु—मैं मुक्त नहीं हूँ, घर और बाहर के उत्तरदायित्वों से बँधा हूँ। मुझ पर जिम्मेदारियाँ हैं, देश की। मैं प्रहरी हूँ, सीमा का। मेरा जीवन मौत की छाया में पल रहा है।"

"सब कुछ कहा लोकेश, पर यह न कहा कि रेनु तेरी भी जिम्मेदारी मुझ पर है।"

"तुम तो स्वयं समर्थ हो।"

"पुरुष समर्थ तो है और स्त्री असमर्थ। लोकेश, चाहे स्त्री कितनी ही कर्मठ क्यों न हो? उसके लिए पुरुष का सहारा आवश्यक है। अब मैं तुम से दूर रहना नहीं चाहती। अपने साथ ही ले चलो मुझे।"

सुनकर लोकेश के हृदय की लौ काँप उठी। भड़क कर बोला—"यह कैसे हो सकता है रेनु!"

"जैसे यह हो सकता है। यदि किसी पुरुष में किसी स्त्री को निभाने का दम नहीं है तो उसे उससे खेलना नहीं चाहिये। आखिर उस दिन तुमने मुझे क्यों मजबूर किया?"

"यह हर मनुष्य की विवशता है रेनु।"

किसी को विवश करके अपनी विवशता का प्रदर्शन करना कहाँ तक उचित है? यदि वह विवशता थी तो यह भी विवशता है।"

"उचित और अनुचित का निर्णय नहीं हो सकता रेनु! क्योंकि अपने अनुसार उचित और अनुचित मानना है। विवशता मेरी जितनी उस दिन थी, उतनी ही आज भी है। ठीक वह है जो तुम कहती हो, अनुचित वह है जो मैं कह रहा हूँ। पर मैं एक कायर हूँ, कमजोर। शायद प्रणय के विमुख वाले शिष्ट पुरुष मेरे जैसे ही होते हैं। सभ्य कहलाने वाले मनुष्य जब अपना मुँह शीशे में देखते हैं तो उनके चेहरे पर ऐसी

ही झाँकियाँ दिखाई देती हैं। कैसी विडम्बना है, मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम मुझे एक दूसरे को प्यार करते हैं। दोनों का दूर रहना दूभर है। लेकिन डरते भी समाज से, दुनियाँ से काँपते हैं। हम प्रेम का अमृत भी पीना चाहते हैं और म भी रखना चाहते हैं। समझ मे नहीं आता यह छल हममें क्यों है ? तुम्ही बता रेनु, मुझे क्या करना चाहिये ?"

"रास्ता तो एक ही है और वह है शादी।"

"शादी, निश्चित यही एक रास्ता है, किन्तु यह भी कौन सहन करेग घर, समाज और मेरे कर्त्तव्य का क्या होगा ? कुछ समझ मे नहीं आता। इ कुँआ उधर खाई। साँप के मुँह मे छछूँदर आ गई है, खाये तो मरा छोड़े तो मर रेनु—जिसके इंगित मे आनन्द ही आनन्द है, जो गंगा की तरह पवित्र और फूल तरह सुन्दर है, जो श्रम और साहस की देवी है। एक मैं हूँ जो पलायन कर रहा डरता हूँ। अपराध करता हूँ। सोचते-सोचते लोकेश ने कहा "तुम मे सत्य है, सौ भी। जो कुछ कहा वह ध्रुव है। क्या नारी की इन विशेषताओं का कोई उ है ? रेनु, तुम मुझे कितना जानती हो ?"

"जितना कोई पुजारी अपने देवता को जानता है।"

"रेनु, मुझे तुमसे सिर्फ मोह है, लोभ नहीं।"

"यह झूठ है, झूठ है।"

"यह सब भावुकता मे कह रही है, सत्य वही है जो तुम प कह रही थी।"

"वह भी सत्य था लोकेश और यह भी सत्य है।"

"यह तुम्हारी महानता हो सकती है रेनु ! पर ये समझ लो कि मैं तु शादी कर तुम्हारे जीवन को विधवा नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हारी माँग सिन्दूर भरूँ भी और माँ मेरी इन्तजार मे फिर हमेशा-हमेशा के लिए प्रतीक्षा कर ही रहे, नहीं रेनु नहीं। वह प्रकरण एक आवेग मात्र था। मुझे क्षमा कर दो।"

"अच्छा, तुमने चाहे कभी कुछ भी कहा हो, लेकिन आज मैं यह सब जानना चाहती हूँ कि वास्तव मे क्या तुम मुझसे शादी करना नहीं चाहते ? क्या तुम्हारे मन का उत्तर है ?"

"नहीं देवी ! मन का नहीं, डर का। सच तो यह है कि तुमसे शादी क का अर्थ है तुम्हारे जीवन को उदास बनाना, निराश बनाना है। तुम तो जानती हो फौजी हूँ। मेरा जीवन जहर की जहरीली हवा मे साँसें लेता है। तुम्हारा भवि देख कर काँप जाता हूँ। तुमसे शादी करना मेरा अपराध होगा रेनु।"

''यह तुम्हारा सामाजिक अपराध होगा, कानूनी अपराध होगा या मानवीय !

"शायद तीनों ही प्रकार के अपराध होंगे। किन्तु सबसे अधिक मानवीय।"

"कल तक तो तुम प्रेम को पुण्य कहते थे। आज प्रेम को अपराध बना कर इसका तिरस्कार कर रहे हो। मैं डाक्टर हूँ लोकेश, मैं भी फौज में तुम्हारे साथ हो लूँगी। मेरा जीवन पल भर भी तुम्हारी जीवनसंगिनी बन कर सफल हो जायगा।"

"किन्तु भावुकता से काम नहीं चलेगा रेनु! मुझे इसके लिए कार्यवाही करनी होगी। मुझे सारा कार्य रीति-रिवाज से ही करना होगा। फौजी जिन्दगी का नियम ही संयम है।"

"रीति-रिवाज स्थायी और व्यापक नहीं होते। अच्छा यह हो कि तुम मुझे उपदेश देते। पर मैं तुम्हें बता दूँ कि केवल शाश्वत नियम ही व्यापक और सत्य होते हैं, स्थायी होते हैं। बाकी सब बदलते रहते हैं। विवाह की प्रणाली विश्व-भर में एक नहीं होगी।"

"पर हम जहाँ रहते हैं वहाँ के क्या तरीके हैं। हमारे रीति-रिवाज, हमारे सामाजिक ढंग, हमारे नियम साधारण जीवन व समाज से पृथक् हैं।"

"यह कहते लोकेश तो अच्छा होता कि हम अपराध को न्याय मानते हैं, पाप को पुण्य कहते हैं, अनैतिकता को नैतिकता बखानते हैं। यदि ऐसा ही था तो उस दिन क्यों न सोचा? मुझे लाचार क्यों किया?"

"यही प्रश्न मेरे दिमाग में चक्कर काट रहा है। उस दिन मैंने तुम्हें क्यों लाचार किया?"

आज मैं क्यों लाचार हूँ? इस लाचारी में भी मन वही चाहता है जो तुम चाहती हो, फिर भी विवशता है।"

"तुम कर नहीं सकते, तो कहते क्यों हो लोकेश! लिखते कुछ हो, बोलते कुछ हो, मन में विद्रोह की ज्वाला, वाणी पर क्रान्ति के गीत और क्रियात्मक प्रसंग उठता है तब पलायन कर जाते हो। समाज से डरना आसान है, उसे बदल नहीं सकते? खैर शायद संसार में ऐसा ही होता है। अब यह संदर्भ नहीं छिड़ेगा। न मेरी शक्ल दिखाई देगी, न मेरे शब्द सुनोगे। जो तूफान उठा है या तो मैं उसे स्वयं में समा लूँगी या उसमें नष्ट हो जाऊँगी। तुम शब्दों के अंगारे उगल-उगल कर सन्तोष मनाते रहो। मैं तो उस समुद्र को मीठा करने चलती हूँ जिसके खारे पानी से किसी की प्यास नहीं बुझती।"

और फिर रेनु एक तूफान की तरह लोकेश से मुँह फेर कर चल दी। लोकेश ने उसे रोकना चाहा पर अब तीर छूट चुका था। कुछ देर लोकेश खड़ा-खड़ा सोचता रहा। उधर को दौड़ा जिधर रेनु गई थी। यहाँ-वहाँ देखा, पर क्या कटा हुआ पतंग उड़ाने वाले के हाथ आसानी से आता है?

लोकेश को संसार फीका लगा। मनुष्य के सामने न जाने कितने क्षण आशा के और कितने निराशा के आते हैं। कभी वह सपनों के महल बनाता है, कभी वैराग्य के गीत गाता है। घटनाएँ बदलती-बदलती रहती हैं।

लोकेश आप ही आप कहता रहा—"परिणामों से मनुष्य को सबक लेना चाहिये। आखिर मनुष्य के जीने का क्या लक्ष्य है? रेनु मुझसे मिली सुख का क्षण आया, दुःख की घटाएँ घिरीं, जैसे यह सब स्वप्न था। यह जागरण का स्वप्न था किन्तु नींद वाले स्वप्न से भिन्न तो नहीं था। कौन मुझे यह सब करने की प्रेरणा देता है? किसने मुझसे कहा था कि रेनु को आलिंगन में बाँध ले, किसने मुझे समाज का डर दिया, किसने मुझमें यश की चाह भरी, किसने मुझे यह अनर्थ करने की आज्ञा दी, किसने मुझमें देश-प्रेम व कर्तव्य और त्याग भरा? सचमुच यह एक अनर्थ है। कितना अनर्थ होता है आज के संसार में। देश देश का दुश्मन, धोखा, व्यभिचार, लूट, कुरीतियाँ, पिसा जा रहा हूँ इन पाटों में। रेनु ने ठीक कहा है, कथनी में विद्रोह है, करनी में नहीं। मैं दुनिया को बदलूँगा, विद्रोह करूँगा।"

कहता-कहता लोकेश हँसा, आप ही आप कह उठा 'मूर्ख! दुनिया को तो बाद में बदलेगा पहले अपने आप को बदल। दुनिया को तू नहीं बदल सकता, अपने को बदल सकता है। बाहर की दुनिया देखने से पहले अपने अन्तर में झाँक। कितना स्वार्थ भरा है यहाँ, कितनी विषमता है। मनुष्य समाज से नहीं अपने स्वार्थ से डरता है। अपने को श्रेष्ठ समझने वाला कितना कलुषित होता है। जाति, धर्म, धन, दौलत परदे पड़े हैं मनुष्य की महानता पर। खो दिया मैंने वह अमूल्य रत्न जो जीवन में प्यार व चमक लेकर आया था।

अब क्या करूँ? मुझे अपने आपमें ग्लानि हो रही है। रेनु निकट आकर दूर हो गई। नहीं, मैंने उसे दूर कर दिया है। अब वह सोच रही होगी कि लोकेश कितना क्षुद्र है! सचमुच क्षुद्र हूँ।

आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दुनिया को नहीं, स्वयं को बदलूँ, अपने आँसुओं से अपने दागों को धोऊँगा। रास्ते साफ और निश्चित हैं। सबसे पहला रास्ता रेनु का अपनाता हूँ। और मेरा तन, मन, धन सब कुछ देश के पश्चात् सिर्फ रेनु का है। इस देह पर केवल मात्र रेनु का अधिकार है, रेनु का।

और, और मैं किसी के दुखों में नहीं, सभी के दुखों में भागीदार बनूँगा।
क्या ? जान पड़ता है मेरा बोझ हल्का हो गया, मेरी आत्मा में बल सा गया
[इ]समें आत्म-विश्वास उमड़ रहा है। कितनी शक्ति है मनुष्य की इच्छा में।
गई किन्तु एक आशा दे गई। क्या मैं उसके ऋण से उऋण हो सकूँगा ?"

मनुष्य जब आत्म समीक्षा करता है तो उसे सत्य का प्रकाश मिलता है।
न को भी प्रकाश मिला। यही तो आत्म दर्शन है। लोकेश को अपने कर्तव्य
ध्यान आया। अपने आपको सम्भाला, आँखों से आँसुओं को पोंछा और चल
ा अपने लक्ष्य की सड़क पर।

दिन निकले, रातें गईं। रातें गईं और दिन आये। दो आत्माएँ एक
ं में मिल चुकी थी। किन्तु शरीर अपने पृथक्-पृथक् होने लेकर दो अलग-
ग राहों पर चल कर भी एक ही मंजिल की तरफ प्रति क्षण निरन्तर एक-दूसरे
परोक्ष बढ़ते जा रहे थे।

दोनों को एक दूसरे की प्रतीक्षा थी, इन्तजार था। उनके हृदयों में एक ही
छिड़ा हुआ, जिसमें पुरानी स्मृतियों की प्रतिध्वनियाँ गूँज जाती थीं।

चाहे संसार में व्यक्ति-व्यक्ति की कितनी ही कहानियाँ हों, हर व्यक्ति के
बहुत-सी घटनाएँ होती हैं। कोई ऐसा नहीं, जिसके जीवन में हलचल नहीं, जिसकी
दयों में कहानियाँ नहीं। प्रत्येक हँसता भी है, रोता भी है, गिरता भी है और
ता भी है, बुझता भी है, जलता भी है पर कोई ऐसा भी नहीं है जिसके साथ
ों का सम्बन्ध नहीं है। हर व्यक्ति के साथ समाज है, राष्ट्र है और संसार भी है।

समय की क्रूरता भारत की सीमाओं पर आँधी की तरह पाकिस्तानी सैनिकों
साथ आकर छा गई। स्वार्थ ने निर्दोष सिपाहियों का रक्त पीने का फिर एक बार
हस किया।

लोकेश मेजर बन चुका था। देश रक्षा का भार उस पर बढ़ चला था। युद्ध
दौरान विजयश्री पाने में लोकेश का बहुत बड़ा हिस्सा था। उसने मोर्चे पर सैनिकों
उत्साह बढ़ा कर अपनी कार्य-कुशलता का व बहादुरी का पूर्ण परिचय दिया।
और संसार ऐसे ही बहादुरों पर टिके रहते हैं। लोकेश सीमा पर लड़ते-लड़ते
नों को गोली का निशाना बन गया। उसकी बेहोश देह फौजी अस्पताल में एक
ग पर रखी है।

कर्नल कहते हैं—चाहे कुछ भी चला जाय पर लोकेश की रक्षा होनी चाहिये।
केश का जीवन राष्ट्र का जीवन है। लोकेश हमारे देश का रोशन दीपक है।

डा॰ राजेन्द्र ने कहा, किन्तु दीपक तो बुझ ना चाहता है। उनका जीवन पूरे खतरे मे है।

कर्नल—"अन्तिम साँस तक आशा रखो।"

मार्शल का आदेश मिलता है कि मेजर लोकेश के जीवन रक्षा के लिए कोई कसर न छोड़ी जाय।

डॉ॰ राजेन्द्र सीधे एक कमरे मे जाते है। सर्जन कहता है "ऑक्सीजन दिया जा रहा है। मुझे इनके जीने की कोई उम्मीद नही है। कुछ समय के तुरन्त बाद ही सर्जनों व डॉक्टरों का एक बोर्ड बुलाया गया।

मुख्य सर्जन ने मार्शल का आदेश उनके समक्ष प्रस्तुत किया और साथ ही यह भी कहा कि पेशेन्ट को खून की बहुत ही आवश्यकता है। पर दु ख है कि उसके रक्त से किसी का रक्त नही मिलता। जो भी रक्त मिलाया जाता है, प्रतिक्रिया का रूप ले लेता है। मेरा खयाल है कि कल सुबह तक उनका बचना कठिन है। फिर भी आप सब देखें और जो भी उपचार हो सकता है, करें।

एक-एक डॉक्टर ने जब लोकेश की परीक्षा कर ली तो मुख्य डाक्टर ने कहा—"तुम भी देखो डाक्टर रेनु! तुमने तो इस युद्ध मे कितने ही कामयाब ऑपरेशन किये हैं।"

रेनु आगे आई। उसने जो रोगी को ध्यान से देखा तो चक्कर आने लगे। फिर भी वह इस समय डॉक्टर थी। उसने स्वय को सम्भाला। भली प्रकार देखने के पश्चात् मुख्य डॉक्टर से बोली—"तनिक मेरा रक्त इनके रक्त से मिला कर देखिये, शायद कोई परिणाम निकल सके।"

सर्जन ने डॉ॰ रेनु के कहने पर उनके विचारो की प्रशसा करते हुए कहा—डॉ॰ रेनु, तुममे देश सेवा का भाव कूट-कूट कर भरा है। अपने तन, मे से जीविका चलाने मात्र लेकर शेष देश सेवा के लिए दान करके भी तुम कुछ और दान करने की भावना रखती हो, इससे मैं बहुत खुश हूँ।"

और फिर सर्जन ने डॉक्टर रेनु के रक्त की परीक्षा की।

परीक्षा के बाद डॉक्टर के चेहरे पर हर्ष था। उन्होने कहा—"अब मेजर लोकेश को बचाया जा सकता है। डॉ॰ रेनु, तुम्हारा रक्त लोकेश के रक्त से मेल खाता है। शायद दूटी की बूटी मिल गई।"

रेनु ने कुछ उत्तर नही दिया। वह प्रसन्न थी, शान्त थी। सर्जन ने कहा—"मेजर लोकेश को काफी खून चढ़ाया जायेगा। उचित यही है कि आपको यही इनके रावर मे ही एक बिस्तर पर लिटा दिया जाय।"

और, और मैं किसी के सुखों में नहीं, सभी के दुखों में भागीदार बनूँगा। यह क्या ? ज्ञात पड़ता है मेरा बोझ हल्का हो गया, मेरी आत्मा में बल आ गया है, मुझमें आत्म-विश्वास उमड़ रहा है। कितनी शक्ति है मनुष्य की दृढ़ता में। वे गईं किन्तु एक रास्ता दे गईं। क्या मैं उनके ऋण से उऋण हो सकूँगा ?"

मनुष्य जब आत्म समीक्षा करता है तो उसे सत्य का प्रकाश मिलता है। लोकेश को भी प्रकाश मिला। यही तो आत्म दर्शन है। लोकेश को अपने कर्तव्य का ध्यान आया। अपने आपको सम्भाला, आँखों से आँसुओं को पोंछा और चल दिया अपने सत्य की सड़क पर।

दिन निकले, रातें गईं। रातें गईं और दिन आये। दो आत्माएँ एक दूसरे में मिल चुकी थीं। किन्तु शरीर अपने पृथक्-पृथक् ढाँचे लेकर दो अलग-अलग राहों पर चल कर भी एक ही मंजिल की तरफ प्रति क्षण निरन्तर एक-दूसरे से अपरोश बढ़ते जा रहे थे।

दोनों को एक दूसरे की प्रतीक्षा थी, इन्तजार था। उनके हृदयों में एक ही गीत छिपा हुआ, जिसमें पुरानी स्मृतियों की प्रतिध्वनियाँ गूँज आती थीं।

चाहे संसार में व्यक्ति-व्यक्ति की कितनी ही कहानियाँ हों, हर व्यक्ति के साथ बहुत-सी घटनाएँ होती हैं। कोई ऐसा नहीं, जिसके जीवन में हलचल नहीं, जिसकी जिन्दगी में कहानियाँ नहीं। प्रत्येक हँसता भी है, रोता भी है, गिरता भी है और चलता भी है, बुझता भी है, जलता भी है पर कोई ऐसा भी नहीं है जिसके साथ औरों का सम्बन्ध नहीं है। हर व्यक्ति के साथ समाज है, राष्ट्र है और संसार भी है।

समय की क्रूरता भारत की सीमाओं पर आँधी की तरह पाकिस्तानी सैनिकों के साथ आकर छा गई। स्वार्थ ने निर्दोष सिपाहियों का रक्त पीने का फिर एक बार साहस किया।

लोकेश मेजर बन चुका था। देश रक्षा का भार उस पर बढ़ चला था। युद्ध के दौरान विजयश्री पाने में लोकेश का बहुत बड़ा हिस्सा था। उसने मोर्चे प का उत्साह बढ़ा कर अपनी कार्य-कुशलता का व बहादुरी का पूर्ण परिच देश और संसार ऐसे ही बहादुरों पर टिके रहते हैं। लोकेश सीमा पर दुश्मनों की गोली का निशाना बन गया। उसकी देह पलंग पर रखी है।

कर्नल कहते हैं—चाहे कुछ भी चला जाय पर लोकेश का जीवन राष्ट्र का जीवन है। लोकेश हमारे

धीरे-धीरे सहानुभूति हाथ बढाने लगी। मेरे हाथों मे भी गति आई। एक दूसरे के हाथ मिलने बिछुड़ने लगे। कभी लोकेश मेरे हाथ पर हाथ रखते, कभी मैं

सहानुभूति बढ़ते-बढ़ते प्रेम तक पहुँची। तूफान और ठंड ने दोनो को मिला दिया। फिर प्रेम प्रणय मे बदल गया था।

मैंने कहा था—"इस भीषण वर्षा मे हृदय के इन ज्वारो मे कितना आनन्द है, कितना रस है, कितना सुख है? क्या यह रात तमाम उम्र की रात नही हो सकती? जी नही चाहता कि यह रात खत्म हो।

लोकेश ने कहा था "रोम-रोम मे रस भर दिया है विधाता ने। कितना धन्यवाद दूँ उस कलाकार को जिसने रूप का यह सागर लहरा दिया। तुम तो ललितकलाओं की एक डाली हो रेनु, जिस पर सारे सुखों के फूल लदे पड़े है।

प्यासा कौन है जो प्यासा नही है। काम बहुत प्यासा होता है। जब यह मन मचलता है तो मनुष्य चन्द्रकान्तमणि की तरह पिघलने लगता है। आवेग बढता चला गया। अतृप्ति तृप्ति के लिए बेताब हो गई। और फिर एक अद्भुत आनन्द ने अतृप्ति को तृप्त कर वैराग्य के श्वास उगले।

फिर किस प्रकार जीवन मे विरह छा गया, यह पुरानी स्मृतियाँ रेनु को आनन्दित कर रही थी।

डॉक्टर ने रेनु के शरीर से रक्त लोकेश के शरीर मे चढाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे लोकेश के चेहरे पर सुर्खी आती जा रही थी और रेनु के चेहरे पर पीलापन। रेनु बराबर लोकेश के चेहरे को देख कर मानो उसे अपने हृदय मे पुरानी स्मृतियो मे पिरो रही हो। थोडी देर बाद लोकेश ने आँखें खोली। उसने अपने आस-पास खड़े चिकित्सको को देखा, और देखा रेनु को।

रेनु की ओर निर्निमेष देखते हुए लोकेश ने कहा—"आप, आप कौन है? शायद मैंने आपको कही देखा है।"

डॉक्टर रेनु मौन थी, पर मुख्य सर्जन ने लोकेश को देख कर कहा "ये हमारे अस्पताल मे सर्जन डॉक्टर रेनु हैं। इनके ही रक्तदान से आपके प्राण बचा सके है।"

रेनु का नाम सुनते ही लोकेश के सामने एक चलचित्र-सा घूम गया। उसे बदली हुई पुरानी रेनु पहचानते देर नही लगी।

भावातिरेक मे वह उठ बैठा, पलग से नीचे उतर रेनु के पैरों की तरफ खड़ा हो रेनु की आँखो मे आँखें गडाता हुआ बोला—"रेनु, डॉक्टर रेनु, नही, देवी रेनु, अपराधी पर तुम्हारा इतना बड़ा अनुग्रह। तुमने अपना सर्वस्व समर्पित करके भी सन्तोष न माना। अपना रक्त दे मुझे फिर जीने को मजबूर कर दिया।

मन ही मन रेणु न जाने कितनी बार 'हुँ' ... के लिए लेट गई। उसने एक बार लोकेश को ऊपर से नीचे तक देखा और पुरानी स्मृतियों में डूब गई ......।

स्कूटर पर एक तरफ लोकेश बैठा है, दूसरी तरफ मैं। मौसम ठंडा था और बरसात हो रही थी। लोकेश के पास जो चादर था किस तरह मेरे घुटने पर डालकर कहा था कि मौसम बड़ा ठंडा है।

मैंने उसे हटाते हुए, 'जी हाँ' कहा। फिर घनिष्ठता दर्शाने द्वारा मेरे घुटनों पर चादर डाल उसे पड़े रहने का आग्रह किया था और कहा था—आप संकोच क्यों करती हैं। मैं मजबूर हो गई। मेरा हाथ अचानक न जाने किस तरह लोकेश के हाथ तक पहुँच गया और स्कूटर के कोने ... हो गये और कीचड़ में आकर गिर गये।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"रेणु"

"कहाँ रहती हो ?"

मैंने धीरे से हाथ दबाते हुए कहा था "चुप रहिये स्कूटर वाले बड़े चालाक होते हैं। चलिये होटल में बातें करेंगे। ठंड भी लग रही है, एक प्याला चाय भी पीएँगे।

स्कूटर एक होटल के समक्ष रुका।

होटल के केबिन में हमारा परिचय हुआ।

उस दिन बड़ी जोरों की बरसात हुई थी। रुकने का नाम ही नहीं था। उस दिन मैं अपने घर भी नहीं लौट सकी थी और वेटिंग रूम में ही लोकेश के साथ रात बितानी पड़ी थी। हाय ! वह रात थी, वह अन्धकार था या मेरे जीवन का प्रकाश। किस तरह मैं स्वप्न में चौंक उठी थी। और लोकेश ने मेरा सर उसके सीने पर रखते हुए दिलासा दिलाया—"एक बहादुर लड़की होकर डरती हो। स्वप्न था तो क्या हुआ ? न जाने कितने अच्छे बुरे स्वप्न देखे जाते हैं रोज।"

मेरे श्वासों में तीव्रता थी। शरीर कुछ ठंड से, कुछ डर से काँप रहा था। मेरी आँखों से डर के आँसू बह आये थे और लोकेश ने जिन्हें अपनी अँगुली से पोंछे थे। मुझे चेतना में लाने के लिए मेरा सर और पीठ सहलाता था। मुझे शान्ति मिली थी। पर एक विचित्र बेचैनी सी भी देह में दौड़ उठी। जिन आँखों में आँसू थे उनमें लोकेश के प्रति सहानुभूति सी उमड़ गई। लोकेश को अंधेरे में उजाले की तरह टटोलती हुई कह उठी—"लोकेश बाबू ..."

लोकेश "हाँ रेणु" कहते हुए मेरे अंगों पर सहानुभूति भरा हाथ फेरने लगे।

अपने आस-पास

धीरे-धीरे सहानुभूति हाथ बढाने लगी। मेरे हाथों में भी गति आई। एक दूसरे के हाथ मिलने बिछुड़ने लगे। कभी लोकेश मेरे हाथ पर हाथ रखते, कभी मैं।

सहानुभूति बढते-बढ़ते प्रेम तक पहुँची। तूफान और ठंड ने दोनों को मिला दिया। फिर प्रेम प्रणय में बदल गया था।

मैंने कहा था—"इस भीषण वर्षा में हृदय के इन ज्वारों में कितना आनन्द है, कितना रस है, कितना सुख है? क्या यह रात तमाम उम्र की रात नहीं हो सकती? जी नहीं चाहता कि यह रात खत्म हो।

लोकेश ने कहा था "रोम-रोम में रस भर दिया है विधाता ने। कितना धन्यवाद दूँ उस कलाकार को जिसने रूप का यह सागर लहरा दिया। तुम तो ललितकलाओं की एक डाली हो रेनु, जिस पर सारे सुखों के फूल लदे पड़े है।

प्यासा कौन है जो प्यासा नहीं है। काम बहुत प्यासा होता है। जब यह मन मचलता है तो मनुष्य चन्द्रकान्तमणि की तरह पिघलने लगता है। आवेग बढ़ता चला गया। अतृप्ति तृप्ति के लिए बेताब हो गई। और फिर एक अद्भुत आनन्द ने अतृप्ति को तृप्त कर वैराग्य के श्वास उगले।

फिर किस प्रकार जीवन में विरह छा गया, यह पुरानी स्मृतियाँ रेनु को आनन्दित कर रही थी।

डॉक्टर ने रेनु के शरीर से रक्त लोकेश के शरीर में चढ़ाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे लोकेश के चेहरे पर सुर्खी आती जा रही थी और रेनु के चेहरे पर पीलापन। रेनु बराबर लोकेश के चेहरे को देख कर मानो उसे अपने हृदय में पुरानी स्मृतियों में पिरो रही हो। थोडी देर बाद लोकेश ने आँखें खोली। उसने अपने आस-पास खड़े चिकित्सकों को देखा, और देखा रेनु को।

रेनु की ओर निनिमेष देखते हुए लोकेश ने कहा—"आप, आप कौन हैं? शायद मैंने आपको कहीं देखा है।"

डॉक्टर रेनु मौन थी, पर मुख्य सर्जन ने लोकेश को देख कर कहा "ये हमारे अस्पताल में सर्जन डॉक्टर रेनु हैं। इनके ही रक्तदान से आपके प्राण बचा सके हैं।

रेनु का नाम सुनते ही लोकेश के सामने एक चलचित्र-सा घूम गया। उसे बदली हुई पुरानी रेनु पहचानते देर नहीं लगी।

भावातिरेक में वह उठ बैठा, पलंग से नीचे उतर रेनु के पैरों की तरफ खड़ा हो रेनु की आँखों में आँखें गड़ाता हुआ बोला—"रेनु, डॉक्टर रेनु, नहीं, देवी रेनु। अपराधी पर तुम्हारा इतना बड़ा अनुग्रह। तुमने अपना सर्वस्व समर्पित करके भी सन्तोष न माना। अपना रक्त दे मुझे फिर जीने को मजबूर कर दिया।

हिन्दी काव्य व कथा साहित्य में एक स्थापित नाम। नितांत अनछुए विषयों को ताजे व टटके बिम्बों-प्रतीकों, शैली के एक खास किस्म के सौंदर्य व भाषा की मिठास से महनीय बनाने वाला कलाकार। दृष्टि इतनी पैनी कि आसपास पसरी जिन्दगी की हलकी से हलकी सरसराहट को भी पकड लेती है और निजता की लय से बुनकर उसे इतनी मार्मिक बना देती है कि पाठकों के लिए एक सुखद उपलब्धि बन जाती है।

जन्म १६४२, प्रकाशित कृतियाँ— 'खंड खंड पाखंड पर्व' (लम्बी कविता), 'सफेद मेमने' (उपन्यास), 'हवा में अकेले', 'भरत मुनि के बाद' (कहानी संग्रह)। प्रकाश्य— 'घास का घराना' (कविता संग्रह), 'दरारों का जुगनू' (नाटक), 'जुगलबदी' (एकांकी संग्रह)।

कुछ कहानियों एव कविताओं के जूलियस पार्नोवस्की द्वारा पोलिश भाषा में, जुजन्न लोरिंज द्वारा हंगेरियन में तथा कृष्णबलदेव वैद द्वारा अंग्रेजी मे अनुवाद किये गये हैं। गुजराती, तेलुगु, मराठी, बगला, पंजाबी, मलयालम, सिंधी एवं उड़िया में कुछ रचनाओं के अनुवाद हुए हैं।

राजस्थानी भाषा में कविताएँ-कहानियाँ लिखी हैं। हिंदी के कई प्रमुख समाचार पत्रों में स्तंभ लेखक। टिप्पणीकार व मंजे हुए समीक्षक।

सम्प्रति—प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शास्त्री महाविद्यालय, जयपुर।